चन्दामामा
अप्रैल १९८४
2

CHANDAMAMA
और अब
चन्दामामा
हमारी प्राचीन संस्कृति की वाहिका—संस्कृत
भाषा के संस्करण का प्रवेशांक यथाशीघ्र बाजार में उपलब्ध होगा।
चन्दामामा की कहानियाँ संस्कृत में सरल व सुबोध शैली में
प्रस्तुत की जाएंगी। यह संस्करण हमारी वैदिक एवं धार्मिक साहित्य
की भाषा के प्रेमियों के लिए अवश्य उपादेय सिध्द होगा।
वार्षिक चन्दा: रु 24-00
प्रति : रु 2-00
प्रवेशांक की प्रति के लिए आप अपने एजेंट के यहाँ अपना नाम दर्ज
करालें या निम्न पते पर मनीआर्डर (धनादेश) भेजें।
डाल्टन एजेन्सीस
चन्दामामा बिल्डिंग्स
188, आर्काट रोड
वडपलनी
मद्रास-600 026

डायमंड कामिक्स में

पलटू जो आज बच्चों की सबसे
मनपसन्द पत्रिका बन गई है।
इस बार के अंक में पढ़िये

पलटू और
चाकलेट का पेड़ 3-50

अंकुर के प्रत्येक अंक से अंकुर लोकप्रियता की नई मंजिलें पा रहा है।
आज अंकुर हर बच्चे की प्यारी पत्रिका है।

अंकुर और
चमत्कारी पेंसिल
3-50

अन्य नये डायमंड कामिक्स

फौलादीसिंह और छिपकली का प्रतिशोध

3-50

चाचा भतीजा और पत्थर की देवी

3-50

लम्बू मोटू और मौत से संग्राम

3-50

अंकुर बाल बुक क्लब

डायमंड कामिक्स प्रा. लि. 2715 दरिया गंज, नई दिल्ली-110002

चन्दामामा

अप्रैल १९८४

*

विषय—सूची

*

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'

संचालक : नागिरेड्डी

समर्थ अधिकारी बनने के लिए सिर्फ़ पद का प्रभाव ही काफी नहीं है बल्कि कर्मचारी के स्वभाव तथा मानसिक गठन का ज्ञान भी जरूरी है। यह शिक्षा मिलती है "योग्यता की कसौटी" नामक कहानी से। एक झूठ को सच बनाने के लिए सौ झूठ कैसे गढ़ा जाता है— यह तो 'गोविन्द' ही बता सकता है— "एक झूठ के लिए सौ झूठ" कहानी में।

"मनुष्य का जन्म" कितना महत्व पूर्ण है। यह तो इस माह की जातक कथा ही बतायेगी। तथा साहस व चमत्कार से भरपूर कई अन्य रोचक कथाएं।

अमर वाणी

न तत् शस्त्रैः नागेन्द्रैः न हयैः न पदातिभिः ।
कार्यं संसिद्धि माप्नोति, यद् बुद्ध्या तु प्रसादितम् ॥

[बुद्धि बल सब से अधिक शक्तिशाली होता है। आयुधों के द्वारा हाथी, घोड़े और पैदल सैनिकों से जो कार्य हम साध नहीं सकते, उस कार्य को बुद्धि बल से साध सकते हैं।]

वर्ष: ३६   अप्रैल १९८४   अंक: ८

एक प्रति: २-०० :: वार्षिक चन्दा: २४-००

चन्दामामा विशेष संवाद

बोलने वाला हाथी

सोवियत रूस के करागांडा के चिड़ियाघर में 'बाटीर' नाम का हाथी अपना नाम बताता है और दर्शकों को देख 'अच्छा आदमी' कहता है।

शब्दों के अनुकरण करने की अद्भुत शक्ति रखने वाले इस हाथी ने शायद दर्शकों से ही ये शब्द सीख लिये हैं।
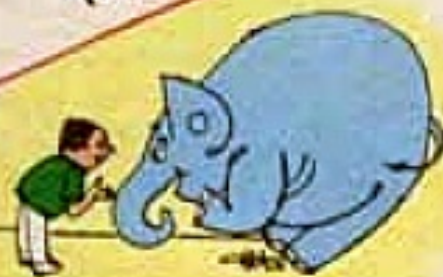
वानर मानव

चीन के हूबी पर्वतीय प्रान्त में हाल ही में कुछ वानर मानव देखे गये हैं। उनकी ऊँचाई सात फुट है और उनके रोम ताम्र वर्ण के हैं। ये पत्ते और फल पर निर्भर करते हैं तथा वृक्षों पर ही इधर-उधर फुदकते रहते हैं।

रात में भी दिन

फ्रांस के राष्ट्रीय अन्तरिक्ष अनुसन्धान केंद्र के क्रिस्टियन मार्चल नामक वैज्ञानिक रात को दिन के रूप में परिवर्तित करने की प्रणाली को अन्तिम रूप दे रहे हैं। उस प्रणाली के अनुसार भारी दर्पणों को चंद्रमा पर पहुँचा कर तथा उचित उपकरणों द्वारा वहाँ पर उन्हें प्रतिष्ठित करने पर उन दर्पणों पर पड़ने वाली सूर्य-किरणें पृथ्वी पर प्रतिबिम्बित हो जायेंगी। इस प्रकार पृथ्वी के कुछ भाग में रात को भी दिन के समान प्रकाश फैल जायेगा।

क्या आप जानते हैं ?

१. हर्षवर्द्धन के दरबारी कवि कौन थे और ग्रंथों के नाम क्या हैं ?
२. उन्नीसवीं शताब्दी में प्रसिद्ध अंगरेज़ कवि-दम्पति कौन थे ?
३. इंग्लैंड की, उन्नीसवीं शताब्दी में, उपन्यास लेखिकाओं के रूप में लब्ध प्रतिष्ठ दो सगी बहनें कौन थीं ?
४. बाल-साहित्य के डेनमार्क के प्रसिद्ध लेखक कौन हैं ?
५. वह अंगरेज़ कवि कौन है जिसका पहला नाम (घरेलू नाम) अलग-अलग वर्तनी में लिखा जाता है ?

(उत्तर के लिए पृष्ठ ६४ देखें)

एक झूठ के लिए सौ झूठ

गोविन्द माधोपुर के जमीन्दार राय साहेब का खानदानी नौकर था। इसका बाप इसी हवेली की सेवा करता-करता वैकुण्ठ सिधार गया। तब वह बहुत छोटा था और बीमार माँ के सिवा दुनिया में उसका अपना कोई न था। इसलिए राय साहेब ने तरस खा कर उसे अपने यहाँ पाला-पोसा और जब वह बड़ा हुआ तो उसे बाप की जगह पर नौकरी भी दे दी। अब वह अठारह साल का जवान हो चुका था। राय साहेब गोविन्द को बहुत प्यार से रखते थे और कभी उससे कोई गलती हो जाती तो बेटे की तरह उसे समझा देते थे।

एक बार राय साहेब ने गोविन्द को एक काम सौंपा।

अगली पूर्णिमा के दिन राय साहेब की बेटी और, पड़ोसी गाँव के जमीन्दार के बेटे का रिश्ता पक्का करने की रस्म अदायगी निश्चित हुई थी। पर कुछ कारणों से मुहूर्त कुछ दिनों केलिए टल गया था। यही ख़बर अपने होनेवाले समधी को पहुँचाने के लिए गोविन्द को समझा कर भेज दिया और स्वयं किसी काम से शहर चले गये।

गोविन्द जब उस गाँव में जाने के लिए तैयार हुआ तो राय साहेब के दिवान तथा रनिवास के लोगों ने कई तरह के काम सौंप दिये। उन कामों को करने में काफी समय लग गया और सूर्यास्त होने में कुछ ही देर रह गई। पड़ोस के गाँव का रास्ता ऊबड़-खाबड़ था और अंधेरा होने से पूर्व जाकर वापस आना सम्भव नहीं था। लेकिन मालिक का सन्देशा पहुँचाना भी जरूरी था, इसलिए गोविन्द तय नहीं कर पा रहा था कि क्या करे।

उसे चिन्तित देख कर बूढ़ा नौकर मोती उसके पास आया और बोला— "सूरज डूबने ही वाला है और जाते-जाते अन्धेरा हो जायेगा। रास्ते में बिच्छू-साँप का खतरा है। इसलिए

गणेश उपाध्याय

आज रुक जाओ। रस्म अदायगी में अभी भी चार दिन बाकी हैं। कल बीमारी का बहाना बनाकर छुट्टी ले लेना और जाकर समाचार दे आना। शहर से लौट कर यदि राय साहेब पूछें तो बता देना कि समाचार दे आया हूँ।''

यह सलाह गोविन्द को अच्छी लगी क्यों कि इससे उसका वर्तमान संकट टल गया। लेकिन मन में यह बराबर खटकता रहा कि मालिक उसका झूठ पकड़ लेंगे तो क्या होगा।

राय साहेब ने शहर से आते ही पूछा— ''गोविन्द ! क्या तुमने खबर पहुँचा दी ?''

''जी हाँ, मालिक !'' गोविन्द ने झट उत्तर दिया।

राय साहेब ने फिर पूछा— ''तुमने यह खबर जमीन्दार को दी या घर में किसी और को दी ?''

''मालिक ! जमीन्दार साहब घर ही पर थे, उन्हीं को यह समाचार दे आया हूँ।'' गोविन्द ने बिना सोचे-समझे बता दिया।

''यह खबर सुनकर जमीन्दार साहेब ने क्या कहा ?'' राय साहेब ने पुनः प्रश्न किया।

''अच्छी बात है ! उनके अनुसार ही करेंगे। यही उत्तर दिया उन्होंने मालिक !'' गोविन्द निःसंकोच बोला।

''मैंने सुना है कि उस गाँव के रास्ते में पड़ने वाली नदी में बाढ़ आ गई है। तुम उस गाँव में किस रास्ते से गये ?''

गोविन्द बेझिझक बोला— ''मालिक ! मैं तैरना जानता हूँ। तैर कर नदी पार कर गया। लौटते समय डोंगी से आ गया।''

राय साहेब गोविन्द के हर उत्तर पर सिर हिला रहे थे। गोविन्द समझ रहा था कि उसकी बात पर मालिक को बिल्कुल शक नहीं हो रहा है।

राय साहेब ने पुनः प्रश्न किया— ''जमीन्दार साहेब का बेटा कल ही अपने मामा के गाँव से लौटने वाला था। क्या वह लौट कर आ गया ?''

''जी हाँ मालिक ! छोटे जमीन्दार साहेब वहीं थे। वे कब लौटे, मुझे नहीं मालूम।'' गोविन्द ने झट उत्तर दिया।

''अच्छा सुनो ! जमीन्दार साहेब की हवेली के पिछवाड़े में एक आम का पेड़ है। क्या उसमें मंजर लग गई है ?'' राय साहेब पूछते

जा रहे थे।

गोविन्द भी सारे सवालों का जवाब ऐसे दिये जा रहा था मानों उसे मालूम था कि राय साहेब क्या-क्या प्रशन करेंगे और उनका हल उसने पहले से निकाल लिया हो।

लेकिन इस प्रशन को सुन कर थोड़ा अटका। उसने तुरन्त अपना दिमाग लड़ाया। मंजर लगने का यह मौसम था ही, इसलिए मंजर जरूर लगी होगी। बस, यह विचार आते ही उसने झट कहा— "मालिक ! बस, मंजर लगने ही वाली थी।"

गोविन्द अब घबराने लगा कि अगला सवाल पता नहीं मालिक क्या पूछ बैठें ? इसलिए वह अब राय साहेब से पिंड छुड़ाना चाहता था। लेकिन राय हाहेब ने वहाँ पड़ी हुई कुर्सी पर बैठते हुए अगला सवाल किया— "मैंने सुना है कि जमीन्दार साहेब की मटमैले रंग की गाय बीमार पड़ गई है। अब कैसी है ?"

इस प्रश्न का उत्तर क्या दे, गोविन्द समझ न सका। उसने सोचा कि जमीन्दार साहिब बीमार गाय को बिना इलाज के छोड़ तो देंगे नहीं और इलाज होगा तो ठीक भी हो जायेगी। इसलिए उसने झट उत्तर दिया— "मालिक ! अब तो गाय बिल्कुल चंगी हो गई है।"

राय साहेब भी यह देखना चाहते थे कि गोविन्द के झूठ का खजाना कितना बड़ा है। इसलिए मुस्कुराते हुए उन्होंने फिर पूछा— "अच्छा गोविन्द ! यह तो बताओ, तुमने वहाँ खाना खाया या नहीं ?"

उसने सोचा कि यदि वह कह दे कि खाना नहीं खाया तो जमीन्दार साहेब के लिए यह अपमान की बात होगी। इसलिए वह सोच कर बोला— "आप के समधी साहेब ने बहुत बढ़िया खाना खिलाया मालिक !"

अब वह झूठ बोलते-बोलते तंग आ गया था इसलिए डरते हुए उसने पूछा— "अब मैं घर जाऊँ मालिक ?"

राय साहेब ने कड़ी नज़र से उसकी ओर देखते हुए कहा— "अरे गोविन्द ! तुमने झूठ बोलना कब से सीख लिया ?"

यह सवाल सुन कर गोविन्द समझ गया कि मालिक ने उसका झूठ पकड़ लिया है, इसलिए वह डर से थर-थर काँपने लगा।

लेकिन राय साहेब मुस्कुराते हुए बोले—"हो सकता है कि किसी कारण से खबर पहुँचाने तुम उस गाँव में न जा सके तो यही बात तुम पहले बता देते। मैं तुम्हें कल भेज देता। लेकिन तुमने झूठ क्यों कहा? और एक झूठ को सच बनाने के लिए झूठ का खज़ाना गढ़ना पड़ा। यह बात तो अब तुम भली भाँति समझ गये होगे।"

गोविन्द इसके उत्तर में सिर झुका कर हाथ जोड़े सिर्फ़ काँपता रहा।

"शहर में ही अचानक मुझे जमीन्दार साहेब मिल गये। मैंने मुहूर्त के बदलने का समाचार उन्हें बता दिया। लेकिन तुमने कहा कि जमीन्दार साहेब गाँव में हैं। तभी मैं समझ गया कि तुम झूठ बोल रहे हो। जब मैंने नदी में बाढ़ आने की बात कही तो तुमने उसे सच मान लिया! क्या तुम्हें नहीं मालूम कि नदी आजकल सूखी हुई है।" राय साहेब ने प्यार से समझाते हुए पूछा।

"नहीं मालिक! कई दिनों से मैं नदी की ओर नहीं जा सका हूँ।" गोविन्द ने काँपते स्वर में उत्तर दिया।

यह सुन कर राय साहेब खिलखिला कर हँस पड़े और बोले— "जमीन्दार साहेब का बेटा अभी मामा के यहाँ से आया नहीं; उनके घर के पिछवाड़े में आम का पेड़ भी नहीं है—वहाँ सिर्फ़ नीम का एक पेड़ है; और मटमैले रंग की गाय—यह सब झूठ है।"

गोविन्द का झुका हुआ सिर झुका ही रह गया। राय साहेब कुर्सी से उठते हुए गोविन्द को डांट कर बोले— "आज से फिर कभी झूठ नहीं बोलना। झूठ अंगार के समान है—यह फैलता ही चला जायेगा और सब कुछ जला कर राख कर देगा।"

गोविन्द हाथ जोड़ कर बोला— "माफ़ कर दीजिए मालिक! मैंने यह सोच कर झूठ कहा कि सच्ची बात बताऊँगा तो आप नाराज़ हो जायेंगे। भविष्य में मैं ऐसा कभी नहीं करूँगा मालिक!"

"अच्छी बात है! मालकिन से माँग कर खाना खा लो और घर चले जाओ।" राय साहेब ने बड़े वात्सल्य भाव से कहा।

२२

[पिंगल को अपनी माता से पता चल गया कि उसके भाइयों ने उसे कितना सताया है। लेकिन उसके भाई झूठे दुख का अभिनय करते हुए जब उसके घर फिर आये तब भ्रातृ प्रेम के वशीभूत होकर उसने उनका दिल से स्वागत किया। पिंगल की सारी संपत्ति हड़पने के लिए उसके भाइयों ने एक षड्यंत्र रचा और अपनी योजना के अनुसार वे एक नाविक से मिले। इसके बाद...]

जीवदत्त के मुंह से उसके छोटे भाई का सारा वृत्तांत सुनकर नाविक हाथ फैला कर खिलखिला कर हँस पड़ा। उसके मन की बात न समझने के कारण जीवदत्त और लक्षदत्त के चेहरे फीके पड़ गये और वे एक दूसरे को ताकने लगे।

नाविक थोड़ी देर तक सोचता रहा फिर उसकी आँखों में गहरी दृष्टि डालकर पूछा—"क्या सचमुच तुम्हारा छोटा भाई पिंगल तुम्हें और तुम्हारी मां को बहुत सता रहा है? मैं झूठी बातें सुनना पसंद नहीं करता! सच सच बताओ!"

"हाँ, हाँ, नाविक जी! मेरे बड़े भाई का कहना शत प्रतिशत सच है। उसमें रत्ती भर भी झूठ नहीं है। वास्तव में भगवान ही जानते हैं कि आज तक हमारे छोटे भाई ने हमें जो सताया उसे हम कैसे सहते आये हैं!" लक्षदत्त ने

कहा ।

नाविक एक बार और उनकी ओर नज़र डालकर सर हिलाते हुए बोला— "तब तो तुम्हारे भाई को लेने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है । मैं उससे अपनी नाव में दो-तीन साल तक खलासी का काम लूँगा । जब वह ठीक रास्ते पर आ जाएगा, तब उसको तुम्हारे घर भिजवा दूँगा । इस से मेरा भी काम बन जाएगा और तुम्हारी समस्या भी हल हो जाएगी । एक पंथ दो काज । ठीक है न !" यों कह कर वह खिल-खिला कर हँस पड़ा ।

"नहीं, नहीं, महाशय ! कृपया ऐसा मत कीजिए ।" यों कहकर जीवदत्त चौंक पड़ा और बोला— "वह पहले ही दुष्ट है, उसको आप दो-तीन साल बाद घर भिजवा देंगे तो वह जरूर हमारी और हमारी मां की जान ले लेगा । वह नाग जैसा दुष्ट स्वभाव का है । हम लोगों से बदला लेकर ही छोड़ेगा । इसलिए आप से हमारा नम्र निवेदन है कि उसको ज़िन्दगी भर आप अपने साथ रखिएगा ।"

"तब तो उसे मेरे हाथ गुलाम के रूप में बेचने के लिए तुम लोगों के साथ तुम्हारी मां भी मान लेगी ? बाद को तुम लोग मेरे बारे में राजा से शिकायत करोगे तो बहुत बुरा होगा । समझ-बूझ कर निर्णय कर लो ।" नाविक ने चेतावनी देते हुए कहा ।

इसके बाद जीवदत्त और लक्षदत्त ने एकांत में जाकर परस्पर बात करने का अभिनय किया । फिर नाविक के पास पहुँच कर बोले— "महाशय, हमने अपनी माताजी से सारी बातें बता दीं । उनका विचार भी किसी न किसी तरह पिंगल को घर से बाहर निकालने का ही है । माता होकर भी उसकी दुष्टता से वे तंग आ गई हैं । लेकिन वे आपके पास आकर खुद ये बातें कह नहीं सकतीं । इसीलिए हम दोनों आपसे निवेदन करने के लिए आए हैं । आप विश्वास कीजिएगा कि हमारी माताजी ने हम को आप के पास भेज दिया है ।"

"ओह, ऐसी बात है ! तब तो एक काम करो । तुम लोग कोई न कोई बहाना करके उसको आज शाम तक समुद्र के किनारे ले

आओ। आगे की बात मैं देख लूँगा। लो उसकी क़ीमत।" यह कहकर नाविक ने एक सौ अशर्फ़ियाँ निकाल कर जीवदत्त की ओर बढ़ा दीं।

पर जीवदत्त ने अशर्फ़ियाँ लेने से इनकार कर दिया। फिर विनयपूर्वक बोला— "महाशय, हम अपने छोटे भाई को समुद्र के किनारे तक नहीं ला सकेंगे। वह सौ सियारों की चालाकी और अस्सी हाथियों की ताक़त रखता है। इसलिए आप ही आज रात को हमारे घर पहुँच कर उसको किसी उपाय से अपने वश में कर लीजिए।"

जीवदत्त को डरते हुए देखकर नाविक एक दम अट्टहास कर उठा। फिर थोड़ी देर बाद बोला— "उसकी चालाकी और ताक़त मेरे सामने किसी काम की नहीं है। राक्षस भी अगर मेरे सामने आ जाये तो उस के गले और पैरों में लोहे की जंजीरें डाल कर नाव में मैं उससे खलासी का काम करवा लूँगा। अच्छी बात है, मैं आज रात को अपने साथ दो खलासियों को लेकर तुम्हारे घर जाऊँगा। तुम लोग तैयार रहना।"

"आपके इस उपकार को हम ज़िंदगी भर नहीं भूल सकते।" यह कहकर नाविक के हाथ से सौ अशर्फ़ियाँ लेकर वे दोनों खुशी-खुशी अपने घर लौट आए।

"सुनो भैया! अब हमें कोई ऐसा उपाय

करना होगा, जिससे पिंगल हम पर शक न करे। शाम को नाविक अगर अपने साथ दो खलासियों को लेकर हमारे घर पहुँचेगा तो पिंगल के मन में कोई संदेह पैदा हो सकता है। इसके लिए कौन सा उपाय किया जाए?" लक्षदत्त ने शंका प्रकट की।

"अरे, तुम्हें नाहक़ डरने की कोई ज़रूरत नहीं है। यह उपाय मैंने पहले ही सोच रखा है।" यों कहकर जीवदत्त ने एक बार चारों तरफ़ नज़र दौड़ाई, फिर आश्वस्त होकर लक्षदत्त के कानों में गुप्त रूप से कुछ फुसफुसाकर कहा।

लक्षदत्त जोर से हँस पड़ा। खुशी से फिर तालियाँ बजाते हुए बोला— "भैया, तुम अपने

बुद्धि-बल से बृहस्पति को भी मात करने की शक्ति रखते हो। यह बात मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। लेकिन पिंगल की संपत्ति को बाँट कर देते समय मेरे साथ अन्याय तो नहीं करोगे ?"

"यह तुम क्या कहते हो भैया ? क्या मैं तुम्हारे साथ अन्याय कर सकता हूँ ? क्या मैं अपने सगे भाई के साथ ऐसा कर सकता हूँ ? आज तक ऐसा कभी क्या हमारे वंश में हुआ है ?" जीवदत्त ने उसके साथ प्यार जताते हुए कहा।

इसके बाद वे दोनों भाई हँसते-अट्टहास करते हुए घर के समीप पहुँचे। लेकिन जब ड्योढ़ी पर उन्होंने पिंगल को देखा तो चिंता का अभिनय करते हुए वे उसके पास जाकर खड़े हो गये।

अपने भाइयों को उदास देखकर पिंगल ने उनसे पूछा— "भैया, क्या हुआ ? आप दोनों इस प्रकार उदास क्यों हैं ?"

इस पर जीदत्त रोनी सूरत बनाकर बोला— "पिंगल, वैसे तो कोई खास बात नहीं है। आज जब हम घर लौट रहे थे, तब हमारे एक पुराने नाविक मित्र से अचानक रास्ते में मुलाक़ात हो गई।

वह कह रहा था कि किसी व्यापार के काम से वह हमारे शहर में आ गया है। इसके पहले कई बार उसने हम दोनों को अपने निवास पर दावत दी थी मगर इस के बदले में हम आज तक उसका अतिथि सत्कार नहीं कर पाए। तुम जानते हो, आखिर हम दोनों तो निरे दरिद्र

ठहरे ! क्या किया जाये ? यही चिंता हमें सता रही है ।"

"भाई साहब ! आपका दोस्त मेरा भी दोस्त है। इसके अतिरिक्त, इस समय तो हम दरिद्र भी नहीं हैं। हम चाहें तो प्रति दिन अवंतीनगर के सारे नागरिकों का अतिथि-सत्कार कर सकते हैं। आप आज रात को अपने नाविक मित्र और उसके अनुचरों को भी हमारे घर दावत पर बुला लीजिए। चाहे तो उनके ठहरने का भी प्रबंध हम यहीं पर कर देंगे।" पिंगल ने बड़े आदर के साथ बड़े भाइयों को समझाया ।

"भैया, क्या तुम सच कहते हो ! तुम्हारी बातों से हमें बहुत खुशी हो रही है।" दोनों बड़े भाई एक स्वर में पिंगल की प्रशंसा करते हुए बोले ।

"हाँ, मैं सच कह रहा हूँ। आप दोनों अपने मित्र को हमारे घर बुलवा लाइए। हम उनके वास्ते बढ़िया दावत का इतंजाम करेंगे।" पिंगल ने कहा ।

"अच्छी बात है। तब तो हम अभी यह समाचार अपने मित्र को दे आते हैं।" यों कहकर जीवदत्त और लक्षदत्त उसी समय शहर की ओर चल पड़े ।

वे दोनों शाम तक जुए के घरों और शराब खानों में बिता कर संध्या होते ही नाविक के पास पहुँचे और उसको अपने घर चलने का निमंत्रण दिया। नाविक अत्यंत आनंदित हुआ और अपने साथ दो बलवान खलासियों को लेकर जीवदत्त और लक्षदत्त के साथ चल पड़ा ।

पिंगल ने अपने घर पर बड़ी आत्मीयता के साथ नाविक और उसके अनुचरों का स्वागत किया ।

जब मेहमान अपनी अपनी जगह आराम से बैठ गये, तब पिंगल और उसकी माता ने थैली में से तरह तरह के पकवान और पेय पदार्थ निकाल कर उनके सामने परोस दिये । नाविक थैली का रहस्य नहीं जानता था । उसने सोचा कि जीवनदत्त और लक्षदत्त ही काफी रक़म ख़र्च करके अपनी ओर से इस प्रकार का सत्कार कर रहे हैं ।

करीब-करीब आधी रात तक सब लोग वार्तालाप करते हुए ख़ुशी के साथ समय बिताते रहें । नाविक ने योजना बनाई कि पिंगल जब नींद की खुमारी में ऊँघने लग आयेगा, तब अचानक उसे क़ब्ज़े में कर ले तथा उसे बन्दी बनाकर अपने साथ ले जाना चाहिए । मगर पिंगल को अतिथि के स्वागत की खुशी में नींद नहीं आई । वह बराबर जागते हुए प्रसन्नता पूर्वक उन्हें कथा-कहानियां सुनाता जा रहा था ।

नाविक ने अपने मन में यह निश्चय किया कि इस प्रकार ज़्यादा देर तक समय व्यर्थ करना उचित नहीं है । उसने जीवदत्त, लक्षदत्त तथा अपने अनुचरों को भी इशारा किया । फिर क्या था, दूसरे ही क्षण सब लोग पिंगल पर टूट पड़े । कुछ लोगों ने पिंगल के हाथ-पैर कसकर पकड़ लिये । जीवदत्त औरर लक्षदत्त ने उसके मुँह में कपड़े इस तरह ठूंस दिए कि वह चिल्ला न सके ।

पिंगल पहले भाइयों के इस अचानक हमले से चकित होकर निश्चेष्ट रहा, फिर थोड़े ही क्षण में संभल कर वह अपने को छुड़ाने का प्रयत्न करने लगा । लेकिन वह अकेला था और उसको बन्दी बनाने वाले पाँच लोग थे । उस वक्त उसे अपने सेवक भल्लूक केतु का स्मरण हो आया । उसने पिंगल को यह समझाकर एक मंत्र सिखाया था कि यदि कोई भारी विपत्ति में फंसने पर वह उसकी याद करे तो वह पिंगल के सामनें हाज़िर हो जायेगा । लेकिन उस विपत्ति के समय काफी देर तक दिमाग लड़ाने पर भी पिंगल को वह मंत्र याद न आया । इस कारण

वह असहाय होकर अपने भाइयों के षड्यंत्र का शिकार और नाविक के हाथों बन्दी बना लिया गया ।

पिंगल की माँ बगल के कमरे में सो रही थी । वह इस घटना से बिलकुल अपरिचित थी । पिंगल के हाथ-पैर रस्सियों से बांधने के बाद दोनों खलासी उसको अपने कंधों पर डाल कर अपने मालिक नाविक के पीछे-पीछे घर से बाहर निकले । जीवदत्त और लक्षदत्त भी उनके पीछे समुद्र के किनारे तक गये और नाविक से बोले— "महाशय ! किसी भी हालत में हमारे छोटे भाई को मत छोड़ियेगा । वह विषैले नाग के समान है । हमने पहले ही आपसे इस बात की प्रार्थना की है । हमारा विश्वास है कि आप अपने वचन का पालन करेंगे ।"

"विषैले नाग का मुँह तो हमने बन्द कर दिया है । अब उसके दाढ़ों को तोड़ने का तरीका भी मैं जानता हूँ । मैं अपनी नाव की डांड को बांधने वाली लोहे की जंजीर से इसको एक बार कसकर बाँध दूँ तो समझ लो, भगवान भी इसको छुड़ा नहीं सकते ।" नाविक ने दृढ़तापूर्वक कहा ।

इसके बाद जीवदत्त और लक्षदत्त नाविक के प्रति बार-बार कृतज्ञता प्रकट करते हुए लौट आए । पर अभी तक सवेरा नहीं हुआ था । इसलिए उन दोनों ने थोड़ी देर तक सोने का स्वांग किया । फिर सवेरा होते ही दोनों बड़ी आतुरता के साथ अपनी माता के पास पहुँचे और उसको जगाकर पूछा— "माँ, माँ ! पिंगल कहाँ है ?"

माँ ने उनकी ओर भोली-भाली नज़र दौड़ा कर कहा— "तुम दोनों किसलिए घबराते हो ? उसके कमरे में जाकर देखो, शायद वह अभी तक सो रहा होगा ।"

"माँ, वह न कमरे में है और न कहीं घर में ही ! इसीलिए तो हम तुमसे पूछ रहे हैं । आख़िर वह आज बड़े सवेरे ही कहाँ चला गया ?" जीवदत्त ने कहा ।

यह सुनकर माँ का दिल काँप उठा । वह घबरा कर उठ बैठी, फिर उसने सारे घर में पिंगल की खोज की । उसकी घबराहट को भाँप

कर जीवदत्त बोला— "माँ, मुझे शक होता है कि रात को हमारे घर जो नाविक आया था, शायद उसके साथ पिंगल भी समुद्री यात्रा के लिए चला गया हो ।"

"यही हुआ होगा ! नाविक पिंगल से कल रात को कह रहा था कि किसी टापू में उजड़े हुए दुर्ग हैं, और उनकी नींवों में खजाने गड़े हैं। इस पर पिंगल उसको समझा रहा था कि ऐसे खजाने को ढूंढ निकालने में मैं सिद्धहस्त हूं। इसलिए शायद उन खजानों के मोह में पड़कर पिंगल भी उसकी मदद करने के लिए चला गया हो।" लक्षदत्त ने जीवदत्त का समर्थन किया।

उस भोली-भाली माँ ने उनकी बातों में विश्वास कर लिया और वह हाथ जोड़कर भगवान का स्मरण करती हुए बोली— "हाँ बेटे ! पिंगल हमेशा भाग्यशाली ही रहा है। उस की सच्चाई, दायलुता और पवित्र आत्मा सदा उसकी सभी खतरों से रक्षा करती रही है। इसलिए मेरा बेटा शीघ्र ही सकुशल लौट आयेगा।"

माता का यह व्यवहार उसके दुष्ट पुत्रों को अच्छा न लगा। इस पर वे अपनी माँ पर क्रोधित होकर बोले— "माँ, तुम्हारी नज़र में वह बुद्धिमान है और हम दुष्ट हैं। हम अच्छी तरह जानते हैं कि तुम हमेशा उसका पक्षपात करती हो। इसलिए अब हम इस घर में एक पल भी नहीं रहेंगे। हमारे पिताजी हमारी संपत्ति जहाँ छोड़ गये हैं उसको खोज-ढूंढ कर उठा ले जायेंगे।" यों कहकर वे दोनों उसी वक्त घर से निकल पड़े। माँ ने उनके घर से निकलते देख रोका और समझाया— "तुम्हारे पिता जो कुछ जमीन-जायदाद छोड़ गये थे, उसे तुम दोनों ने बरबाद कर डाला। इस घर में अब जो कुछ संपत्ति है वह सब पिंगल की मेहनत की गाढ़ी कमाई है।"

इस पर दोनों का क्रोध और भड़क उठा और वे माँ को गाली गलौज देकर उसे अपमानित करने लगे। और फिर घर का कोना-कोना छान कर पिंगल का सारा धन और उसकी जादू वाली थैली ढूंढ निकाली। — (क्रमशः)

करनी का फल

आंधी और तूफान की भयावनी रात रह-रह कर चमकने वाली बिजली से और भी खौफ़नाक हो गई थी। लेकिन संकल्प और निश्चय में दृढ़ और साहस के धनी विक्रम तनिक भी विचलित नहीं हुए और पुनः पेड़ के पास जाकर उस पर से शव उतारा। फिर यथा प्रकार शव को कन्धे पर डाल श्मशान की ओर चल पड़े।

तब शव में स्थित बेताल ने विक्रम से कहा: "राजन ! इस भयानक श्मशान में इस आधी रात के वक्त आप जो श्रम उठा रहे हैं, उसके व्यर्थ हो जाने की संभावना भी बनी हुई है। ऐसा हो जाने पर यदि आप किसी पर नाराज़ हो जायें तो वह व्यर्थ होगा। आपको यह मानकर संतुष्ट रहना पड़ेगा कि यह सब अपनी ही करनी का फल है। इसके उदाहरण के रूप में मैं आप को श्रावण नामक एक कवि की कहानी सुनाता हूं।

बेताल कथा

ध्यान से सुनिए, शायद इससे मार्ग की थकान थोड़ी दूर हो जाये ।"

बेताल सुनाने लगाः काम्भोज देश पर चंद्रपाल नामक राजा राज्य करते थे। वे बड़े ही दयालु थे। उन के पास जो भी याचक जाता, खाली हाथ कभी नहीं लौटता। उनके दरबार में अनेक कवि और पंडित थे । वहाँ प्रति दिन सायकाल कवि-गोष्ठी हुआ करती थी ।

एक दिन श्रावण नामक एक कवि राजा के आश्रय में आए और उन्होंने राजा चंद्रपाल को उन्हीं के बारे में तुरत रची हुई एक कविता सुनाई। उनकी कविता पर प्रसन्न होकर राजा ने श्रावण को ऊँची तनख्वाह पर अपने दरबार में एक अच्छा पद दे दिया ।

दूसरे दिन से श्रावण दरबार में आने लगे। शाम के समय कवि अपनी कविता सुनाते और पंडित गंभीर विषयों पर चर्चा करते। राजा बड़े उत्साह के साथ उन्हें सुना करते थे। पर उनकी कविताओं में श्रावण को अनेक दोष और व्याकरण की अशुद्धियाँ दिखाई दीं। पर यह सोच कर श्रावण कुछ दिनों तक मौन रहे कि मैं नया-नया आया हूँ। अभी से उनकी कविताओं और भाषा के प्रयोगों का खण्डन करना उचित नहीं है। लेकिन थोड़े दिन बाद वे उन कवियों की त्रुटियों को सहन न कर पाए ।

श्रावण को इस बात पर अत्यंत आश्चर्य होने लगा कि राजा उन कवियों की कविताएँ सुनकर कैसे आनंदित होते हैं जब कि उनमें अनेक त्रुटियाँ हैं। साथ ही उन के मन में एक शंका भी हुई— "कहीं राजा चंद्रपाल उन कवि-पंडितों को निराश्रित होने से बचाने के लिए ही तो नहीं उन्हें दरबार में रखे हुए हैं ।"

इसके बाद श्रावण ने उन कवियों और पण्डितों की हालत के बारे में पूछ-ताछ की तो उन्हें पता लगा कि उन में एकाध कवि को छोड़ कर बाक़ी सब लोग राजा के आश्रय के बिना भी अपने परिवार चलाने की क्षमता रखते हैं।

इस पर श्रावण को राजा की बुद्धिमत्ता और अपनी कविता पर भी संदेह हुआ। चंद्रपाल प्रति दिन कविता तो सुनते थे, पर उन्होंने कभी

अपनी कविता नहीं सुनाई थी। पण्डितों की चर्चाएँ सुन-सुन कर आनंद का अनुभव करते थे, लेकिन कभी उनकी गोष्ठियों में भाग नहीं लिया।

उन दिनों शंकरानंद नामक एक महा पंडित काशी से अपने पड़ोसी देश कोसल जाने के मार्ग में काम्भोज नगर में रुक गए। श्रावण ने उनके दर्शन करके उनको अपनी कविता सुनाई और हाथ जोड़ कर विनय पूर्वक निवेदन किया— "महानुभाव ! मैं अपनी कविता सुधारने के ख्याल से आपकी सेवा में आया हूँ। फिलहाल मैं राजदरबार में आश्रय प्राप्त करके अपनी जीविका चला रहा हूँ। आप कृपया एक कवि के रूप में मेरे स्तर की सच्ची आलोचना बताइए।"

शंकरानंद ने मन्दहास करके कहा— "सच्ची बात तो यह है कि यदि तुम्हें राजाश्रय प्राप्त हो गया है, तब तो एक कवि के रूप में नहीं बल्कि मैं कहूँगा कि एक व्यक्ति के रूप में यह तुम्हारी क़िस्मत का फल है। तुम्हें तो अपने को सच्चे कवि कहलाने के लिए बड़ी साधना करनी होगी।"

इस पर श्रावण ने शंकरानंद के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की। इसके बाद वे महामंत्री विशाल के पास जा कर बोले— "महामात्य, कवि के रूप में मैं अत्यंत कम पांडित्य रखता हूँ, फिर भी प्रसन्न होकर राजा ने मुझ को अपने दरबार में नौकरी दी, इस के लिए मैं बहुत कृतज्ञ हूँ। मैं अधिक विद्याभ्यास करने के विचार से काशी जाना चाहता हूँ। इसलिए कृपया मुझे

"राजन ! श्रावण की एक कविता मात्र सुन कर मुग्ध हो चंद्रपाल ने उसको अपने दरबार में आश्रय दिया । इस अवसर से हाथ धो लेना क्या श्रावण की मूर्खता न होगी ? यह स्वयं उसकी करनी का फल है । दरबार के किसी कवि या पंडित ने उसकी निन्दा नहीं की । वे लोग अपनी-अपनी विद्वता के बल पर सुखमय जीवन बिता रहे थे । एक बात और कवि बनने में और साधना करने की आवश्यकता थी, लेकिन मंत्री विशाल ने श्रावण को अत्यंत बुद्धिमान बता कर उसकी प्रशंसा क्यों की ? वास्तव इसके पीछे मंत्री का उद्देश्य क्या है ? इस संदेह का समाधान जानकर भी नहीं बताएंगे तो आपका सिर धड़ से अलग हो जाएगा ।"

अनुमति दीजिए ।"

मंत्री ने श्रावण की ओर ध्यान से देखते हुए कहा— "श्रावण ! आप न केवल शिष्टाचार जानते हैं बल्कि बड़े बुद्धिमान और व्यवहार कुशल भी हैं । आपको राजा से अनुमति लेनी चाहिए थी, और केवल मुझ से विदा लेना न्याय संगत न होगा ।"

मंत्री की बातें सुन कर श्रावण मुस्कुरा कर बोला— "महानुभाव, मैं राजा के प्रति आदर भूलने वाला कृतघ्न नहीं हूँ । आप कृपया मुझ पर संदेह मत कीजिए । मैं ऐसा अनुचित कार्य कभी नहीं करूँगा ।" इसके बाद श्रावण राजा से भी विदा लेकर वहाँ से चले गए ।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर पूछा—

विक्रम ने झट उत्तर देते हुए कहा— "श्रावण अत्यंत बुद्धिमान थे, इस बात में कोई संदेह नहीं । पर यहाँ हमें कथा के संदर्भ को लेकर विचार करना होगा कि श्रावण किस स्तर के कवि थे । शंकरानंद यह जानकर आश्चर्य में पड़ गये कि एक कवि के रूप में श्रावण को राजाश्रय प्राप्त हो गया है । उस को यह स्पष्ट बताया भी कि वह कवि के रूप में नहीं, एक व्यक्ति के रूप में अवश्य भाग्यशाली है, एक सच्चा कवि बनने के लिए उसे और बड़ी साधना करने की आवश्यकता है । श्रावण तो ज्ञान पिपासु था ही । जो व्यक्ति अपने को सुधारना

चाहता है उसके लिए उसके गुण-दोषों को बताने वाले व्यक्तियों की आवश्यकता है। पर चंद्रपाल के दरबार में उसे ऐसा कोई व्यक्ति दिखाई नहीं दिया। उसकी नीरस कविता सुनकर ही राजा चंद्रपाल आनंदित हो जाते थे। ऐसे राजा के दरबार में रहने से श्रावण कभी भी सच्चा कवि नहीं बन सकता था। इसलिए उसने किसी दूसरे स्थान में जाने का निश्चय किया।

इसके अलावा, श्रावण के मन में यह संदेह भी पैदा हुआ कि राजा चंद्रपाल ऊँचे स्तर के बुद्धिमान और विवेकशील नहीं हैं। यदि यह बात सच है तो राज्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए पीछे रहकर उसका संचालन करने वाले मंत्री विशाल ही होंगे। इसीलिए श्रावण ने मंत्री विशाल के दर्शन करके और उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करके उनसे पहले विदा ली। इस प्रकार की कल्पना करने वाले श्रावण को यदि मंत्री ने बुद्धिमान कह कर प्रशंसा की तो इस में आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है।

इसके अतिरिक्त मंत्री ने जो यह सलाह दी—कि तुम्हें आश्रय देने वाले राजा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करके उनसे विदा लिए बिना मुझसे विदा लेना तुम्हारे लिए न्याय संगत नहीं है। इसमें एक चेतावनी के साथ एक सुझाव भी है। वह यह कि यह राजा चंद्रपाल का अज्ञान कहीं प्रकट न करे।

श्रावण व्यवहार कुशल भी था। इसीलिए उसने मंत्री से कहा था कि मैं राजा के उपकार को भूलकर अन्यथा व्यवहार करने वाला कृतघ्न नहीं हूँ।

राजा चंद्रपाल भले ही अत्यंत बुद्धिमान न रहे हों, पर वे अत्यंत उदार स्वभाव के थे। यह बात मंत्री और श्रावण अच्छी तरह से समझ चुके थे। राजा के प्रति उनके व्यवहारों में जो अंतर दिखाई देता है, वह उनके स्थानों के अनुरूप था।

राजा के इस प्रकार मौन धारण करते ही बेताल शव के साथ अदृश्य हो कर पुनः पेड़ पर जा बैठा। —(कल्पित)

गुरु का उपहास

विंध्याचल में एक सरोवर के किनारे एक गुरुकुल था। उस काल के गुरुकुलों में शिक्षा के लिए वह अत्यन्त प्रसिद्ध था। उसके संचालक मातंग नामक एक महापंडित थे। उनके गुरुकुल में अनेक संपन्न परिवार के बच्चे आकर शिक्षा पाते थे। उनमें विरूप नामक एक विद्यार्थी भी था जो उस देश के राजा के बहनोई का पुत्र था।

विरूप नटखट और हठी था। वह अक्सर गुरुकुल के नियमों का उल्लंघन किया करता था। मातंग स्वामी दायें पैर से थोड़ा लंगड़ा कर चलते थे। इस को आधार बना कर विरूप अपने सहपाठियों के बीच उनको लंगड़ा स्वामी कह कर परिहास किया करता था। कुछ दिनों के बाद यह समाचार मातंग पंडित के कानों में पड़ा।

मातंग पंडित ने एक दिन अपना पाठ पढ़ा चुकने के बाद अपने विद्यार्थियों को एक कहानी सुनाई।

आज से लगभग पचास साल पूर्व इस सरोवर के उस पार भैरवानन्द नाम के एक महा पंडित अपना एक गुरुकुल चला रहे थे। वे अनेक शास्त्रों के साथ-साथ मंत्र-शास्त्र के भी महान पंडित थे। वे अपने शिष्यों की शिक्षा समाप्त करने के बाद जिज्ञासु विद्यार्थियों को मंत्र-शास्त्र भी पढ़ाया करते थे।

एक बार सुभानु और मतंग नामक दो विद्यार्थी अपनी विद्या के पूर्ण होने के बाद महा पंडित की सेवा में पहुँचे और उनसे प्रार्थना की कि वे उन्हें मंत्र शास्त्र की शिक्षा भी देने की कृपा करें।

भैरवानंद उनकी जिज्ञासा देख बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें एक मंत्र का उपदेश देकर बोले— "बेटे, तुम लोग इस मंत्र के जरिए अपनी इच्छा के अनुरूप कोई भी रूप धारण कर सकते हो। पर इस के लिए तुम्हें कुछ

कठिन नियमों का पालन करना होगा। इसीलिए तुम्हें अत्यंत आवश्यक स्थिति में ही इस मंत्र को काम में लाना होगा। केवल मंत्र की परीक्षा लेने या समय काटने के विचार से प्रेरित हो कर तुम्हें इस मंत्र का प्रयोग कभी नहीं करना होगा। किसी कारण से विकलांग होने पर यह मंत्र काम न देगा।"

इस के बाद दोनों शिष्य अपने गुरु से विदा लेकर राज-दरबार में कोई पद पाने के ख्याल से राजधानी की ओर चल पड़े। रास्ते में उन्हें एक नदी पार करनी पड़ी। नदी पार कराने वाला मल्लाह उस पार था।

इस पर मतंग ने सुभानु से कहा— "मल्लाह तो तभी इस पार आएगा जब उसे इस पार आने वाले यात्री मिलेंगे। हम लोग तब तक उसका इन्तजार क्यों करें? आवश्यकता पड़ने पर हम लोग अपने मंत्र के प्रयोग से इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं। इसलिए हम मछलियों का रूप धर कर तैरते हुए नदी के उस पार पहुँच जाएँगे।"

"सुनो दोस्त। हमारे गुरुजी ने बताया था कि केवल मंत्र की परीक्षा लेने के लिए या समय काटने के लिए हमें इस मंत्र का प्रयोग नहीं करना चाहिए।" सुभानु ने मतंग को गुरु जी की चेतावनी याद दिलाई।

यह जवाब सुनकर मतंग खीझ उठा और बोला— "तब तो तुम नाव पर ही उस पार आ जाओ। मैं इसी वक्त मछली के रूप में ही उस

पार जाऊँगा।" यों जवाब दे कर वह मछली का रूप धारण करके नदी के उस पार पहुँच गया।

थोड़ी देर बाद सुभानु नाव में नदी पार करके मतंग से जा मिला। वहाँ से पैदल चल कर राजधानी पहुँचना मतंग के लिए श्रमसाध्य प्रतीत हुआ।

उसने सुभानु को फिर सलाह दी— "हमें किसी पक्षी का रूप धरकर नदी पार करना उत्तम होगा।"

पर सुभानु सहमत नहीं हुआ। इस पर मतंग उस को मूर्ख समझकर कबूतर का रूप धारण करके आसमान में उड़ा। वह थोड़ी दूर उड़ने के बाद अपनी थकावट मिटाने के लिए पेड़ की एक डाल पर उतर गया।

उस वक्त एक चील आसमान में उड़ रही थी। वह कबूतर रूपधारी मतंग को देखकर फुर्र से नीचे आयी और उसे अपने पंजों से जकड़ कर आसमान में उड़ गयी। चील से अपनी जान बचाने के लिए मतंग मनुष्य के रूप में बदल गया।

अपने पंजों में फंसे कबूतर को मनुष्य के रूप में बदलते देख चील घबरा गयी और उसने अपने पंजे ढीला करके उसको छोड़ दिया। मतंग बड़ी ऊँचाई से नीचे की झाड़ियों पर गिर पड़ा। भाग्य से उसके प्राण तो बच गए, मगर उसके शरीर में काफी घाव हो गए और उसका दायां पैर टूट गया।

उस समय इस रास्ते से गुजरने वाले तीर्थ यात्रियों की मदद से मतंग कुछ दिन बाद अपने गुरु भैरावानंद के गुरुकुल में पहुँचा और अपनी करनी पर पछताते हुए उन्हें सारा वृत्तांत सुना कर विलाप करने लगा।

भैरवानंद ने उस को सांत्वना देकर उसके टूटे पैर का इलाज किया। कुछ दिनों के बाद उसके घाव तो भर गए, पर उस का लंगड़ापन दूर नहीं हुआ। इस अंग विकलता के कारण वह गुरु के द्वारा प्राप्त मंत्रोपदेश से हाथ धो बैठा। पर सुभानु ने राजदरबार में नौकरी प्राप्त की और कालक्रम में वह विद्या शाखा का मुख्य अधिकारी बन गया।

मातंग पंडित ने कथा समाप्त कर के बताया— "अपने गुरु के द्वारा बताए गए नियमों का उल्लंघन करने के कारण मतंग न केवल लंगड़ा बना बल्कि मंत्र के द्वारा उसे जो अपूर्व शक्तियाँ प्राप्त हो गई थीं, उन से भी वंचित हो गया। उस समय का मतंग मैं ही हूँ। गुरु के प्रति श्रद्धा-भक्ति न रखने वाला विद्यार्थी कभी भी उत्तम पंडित नहीं बन सकता।" यों कह कर लंगड़ाते हुए वह अपनी कुटी में चले गए।

इसके बाद विरूप ने कभी गुरुकुल के नियमों का उल्लंघन नहीं किया। और न उसने अपने सहपाठियों के सामने मातंग स्वामी को लंगड़ा कर उनका परिहास किया।

पत्नी

मधुपुर में एक किसान रहता था। नाम था माधो। माधो स्वभाव से नरम दिल का था, लेकिन उसकी पत्नी दबंग थी। वह बात-बात पर माधो से झगड़ा करती और घर का अपना काम-काज भी उसी से करवाती। माधो का अपनी पत्नी पर कोई वश न चलता।

पत्नी जब ससुराल में आयी थी, तब पति केवल मरदों के काम ही किया करता था, लेकिन धीरे-धीरे औरतों के द्वारा किए जाने वाले काम भी उसको करने पड़े। उसकी पत्नी ने खेत के कामों में सहयोग तो कभी नहीं दिया, लेकिन घर के काम-काज माधो से करवाने लगी। गाय और बकरियों की देखभाल उसी को करनी पड़ती। और आखिर में पानी भरना, झाड़ू देना, कपड़े धोना, चूल्हा चौके के सारे काम उसी के सर आ गए।

इतनी सारी मेहनत के बावजूद उसकी पत्नी दिन भर उसको डाँटती-डपटती रहती। उसके हर काम की आलोचना करती। पत्नी की शिकायतों और गालियों को सुनने के लिए भी उसे फुरसत न थी। इसलिए वह काम पर इधर-उधर भागता रहता तो उसकी पत्नी एक जगह स्थिर खड़े रहकर ऊँचे स्वर में चिल्ला-चिल्ला कर कहती— "तुम तो एक भी काम करना नहीं जानते। यह भी नहीं जानते कि कौन काम पहले करना है और कौन पीछे। ऐसे अनाड़ी पति के साथ मैं गृहस्थी कैसे चला सकती हूँ!"

पत्नी की इन सारी हरकतों को माधो चुपचाप सह लेता था। ऐसी पत्नी के साथ मुँह लगना उसे कतई पसंद न था। वह अच्छी तरह जानता था कि इस बात के लिए सब लोग उस पर हँसते हैं। वह अपने दोस्तों से अक्सर कहा करता था— "तुम लोग हँसते क्यों हो? आखिर इसका कोई प्रयोजन भी तो हो!"

एक दिन पत्नी ने पति से कहा— "देखो,

(पच्चीस वर्ष पूर्व चन्दामामा में प्रकाशित कहानी)

दूध फट गया है, आखिर तुमने कौन सा काम ठीक से किया है ?"

माधो ने आश्चर्य से पूछा— "दूध के फट जाने में मेरा क्या दोष है ?"

"अगर तुमने दूध की हांडी को रेशों से धो लिया होता तो दूध क्यों फट जाता ?" पत्नी ने टोका ।

"लो देखो, मैं नहीं जानता था कि दूध की हांडी से लेकर सारे बर्तन मुझको ही मांझने हैं ! और वह भी अभी-अभी तुम बता रही हो ।" पति ने शिकायत की ।

"मैं कितने काम कर सकती हूं । जब पुरुष घर में है तो उसकी मदद मेरे लिए आवश्यक है या नहीं—तुम्हीं बताओ ।" पत्नी ने पूछा ।

"यह सब कुछ नहीं जानता मैं । मुझे जो-जो काम करने हैं, उनकी एक सूची बनाकर मुझे दे दो । यदि मैं उन कार्यों को न करूं तब तुम मेरी शिकायत कर सकती हो । इस झगड़े का मौखिक वार्तालाप से फ़ैसला होने वाला नहीं है ।" पति ने कहा ।

इसके बाद पत्नी ने पति के द्वारा किये जाने वाले कार्यों को याद करते हुए कहना शुरू किया और पति उनकी सूची बनाने लगा । आखिर एक लम्बी सूची बन गयी ।

थोड़े दिन बीत गए । संक्रान्ति का पर्व आया । पर्व के पहले दिन पत्नी ने अपने मकान के पास स्थित पानी के गड्ढे के पास कपड़ों का ढेर लगा दिया । पति कपड़े धोकर पत्नी के हाथ देता जा रहा था और पत्नी उन्हें पसारती जा रही थी । यह काम समाप्त होने तक पत्नी पति को बराबर बुरा भला कहती ही रही— "कल ही त्योहार है । अभी तक रोजमर्रे के काम भी पूरे नहीं हो पाए । अब न मालूम त्योहार के काम कब पूरे होंगे ! तुमने तो सूची बना ली, लेकिन क्या फ़ायदा । वैसे कई नालायक़ हैं, मगर तुम जैसा नालायक़ आज तक मैंने कहीं नहीं देखा । मेरी माँ ने कभी ठीक ही कहा था... ।" पत्नी की बात पूरी भी न हो पायी थी कि एक दुर्घटना हो गयी । उसने अपने पति के हाथ से कपड़ा लेने के लिए धोने के पत्थर पर पैर रखा । पति को गालियाँ देने के आक्रोश में उसने उस पत्थर की

ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। उस पर पैर रखते ही पत्नी का पैर फिसल गया और वह धम्म से पानी के गड्ढे में गिर गयी।

"अजी, सुनो! मैं डूबती जा रही हूं। मरी जा रही हूं। मुझे ऊपर खींचो।" पत्नी जोर-शोर से चिल्लाने लगी।

"तुम डूबोगी नहीं, गड्ढा ज़्यादा गहरा नहीं है। पानी तो तुम्हारी गर्दन तक ही है।" पति ने कहा।

"जाड़े के मारे मेरा बदन जमता जा रहा है। जल्दी मुझको बाहर निकालो।" ठण्डक के मारे कांपती हुई पत्नी चिल्लाने लगी।

"यह कैसे हो सकता है? सूची के मुताबिक़ मुझे तो बहुत सारे काम करने हैं। यह काम तो मेरी सूची में नहीं है। इसलिए मैं क्यों करूं?" माधो ने मज़ा लेते हुए कहा।

"मुझको तुरन्त ऊपर निकालोगे या नहीं। हे भगवन! जोंक मेरे बदन पर रेंग रहे हैं। बचाओ, बचाओ।" पत्नी ने पुकारा।

"ऐसा मालूम होता है कि हमने आपस में जो निर्णय किया है, उसको तुम भूल गयी हो। चाहे तो अभी मैं घर जाकर सूची ले आऊं।" यों कहकर वह घर के अन्दर गया और सूची लाकर पढ़ने लगा।

पत्नी जाड़े और जोंकों के डर से कांपती हुई प्रार्थना के स्वर में बोली— "मैं मरी जा रही हूं। तुम उस सूची को फाड़कर जल्दी मुझको बाहर निकालो। तुम्हारा पुण्य होगा।"

"हां, तुमने यह जो बात कही, बहुत खूब है! आइन्दा इस सूची से हमारा कोई मतलब नहीं है। भविष्य में तुम घर के सारे काम काज करोगी और मैं बाहर के काम करूंगा। इस शर्त को मानने के लिए तुम तैयार हो न?" पति ने पूछा।

पत्नी ने तुरन्त सर हिलाकर स्वीकृति दी। इसके बाद माधो ने पत्नी को गड्ढे से बाहर निकाला और उसको घर के अन्दर ले जाकर अलाव के पास बिठाया। इसके बाद फिर कभी पत्नी ने पति की निन्दा नहीं की और न अपने कामों में उसकी मदद ही माँगी।

मनुष्य का जन्म

ब्रह्मदत्त जिस समय काशी राज्य पर शासन करते थे, उसी समय बोधिसत्व मगध के राज-परिवार में सेवक के रूप में काम करते थे।

कभी मगध और अंगदेश के बीच चंपा नदी बहती थी। उस नदी के गर्भ में नाग राज्य था और चंपेय उस राज्य के राजा थे।

मगध और अंग राज्य के बीच अक्सर युद्ध हुआ करते थे। एक बार अंग देश के राजा से मगध के राजा हार गये। वे अपने घोड़े पर युद्ध भूमि से भागते हुए चंपा नदी के समीप पहुँचे। उस समय उनके मन में यह विचार आया कि अपने शत्रु के हाथों मरने की बजाय आत्महत्या कर लेना कहीं उत्तम है। इसी विचार से वे अपने घोड़े के साथ नदी में कूद पड़े। पर आश्चर्य की बात कि घोड़ा मगध राजा के साथ नदी के गर्भ में स्थित नागराजा के दरबार में जा उतरा।

नागराजा ने अपने सिंहासन से उठकर आदरपूर्वक मगध राजा का स्वागत किया और उनके इस तरह आने का कारण पूछा। मगध राजा ने अपना सारा वृत्तान्त नागराजा को सुना दिया।

इसके बाद नागराजा ने अपने अतिथि को वचन दिया— "जो कुछ हुआ, उसकी चिन्ता आप न कीजिए। मैं आप को वचन देता हूँ कि अंगराजा के साथ इस बार आपका जो युद्ध होगा, उसमें आपकी विजय दिलाने में मैं हर प्रकार से सहायता करूँगा।"

अपने वचन के अनुसार नागराजा ने युद्ध में मगध के राजा की मदद की। परिणाम स्वरूप अंगराजा मगधराजा के हाथों मारे गये। इसके बाद मगध के राजा दोनों राज्यों के राजा बनकर अत्यन्त वैभव पूर्वक राज्य करने लगे।

(जातक कथा)

उस समय से मगध राजा और नागराजा के बीच अगाध मैत्री स्थापित हो गयी। मगध के राजा प्रति वर्ष एक बार सपरिवार चंपा नदी के तट पर जाया करते थे। उस दिन नागराजा नदी में से अपार वैभव के साथ बाहर निकल आते और मगधराजा को अमूल्य उपहार भेंट करते।

मगधराजा के परिवार में एक सेवक के रूप में रहने वाला बोधिसत्व प्रति वर्ष नागराजा के वैभव को अपनी आँखों से देखता आ रहा था और उस वैभव के लिए कामना करता आ रहा था। इसलिए उसकी मृत्यु के समय नागराजा का वैभव उसके दिल में बैठ गया। इस कारण नागराजा की मृत्यु के सातवें दिन बोधिसत्व ने नागराजा के रूप में जन्म लिया।

लेकिन पिछले जन्म में वे पुण्यात्मा थे। इस कारण उन्हें अपने इस सर्प शरीर को देखते ही उससे घृणा पैदा हो गयी। नागराजा के वैभव की कामना करने के कारण उन्हें पश्चात्ताप भी हुआ। इसलिए वे सोचने लगे कि क्यों नहीं वह आत्महत्या करके इस जन्म का अन्त कर लें। उसी समय सुमना नामक एक नागकन्या अपनी सखियों के साथ उनके पास आई और उन्हें प्रणाम किया।

सुमना को देखते ही नागराजा उसकी ओर आकृष्ट हुए और उन के मन में जीने की इच्छा जागृत हुई और उन्हों ने अपनी आत्महत्या का प्रयत्न छोड़ दिया और उसको अपनी पत्नी बनाकर नागलोक पर शासन करने लगे।

कुछ दिन तक राज्य करने के बाद उनके मन में उपवास, जप आदि करके पुण्य कमाने की इच्छा पैदा हो गयी। इसलिए उन्होंने नागलोक को छोड़ कर मानव लोक में जाने का निश्चय किया।

उपवास के दिनों में वे अपने महल को छोड़ एक मार्ग के किनारे स्थित चींटियों की बांबी पर गेंडुली मार कर लेट जाते और सोचते—"मुझे कोई चील उठा ले जाए, कोई सपेरा पकड़ कर ले जाए।"

पर उनकी इच्छा के अनुसार नहीं हुआ। उस रास्ते से जाने वाले लोग बांबी से लिपटे नाग को देवता मानकर फूल और चन्दन के

साथ उनकी पूजा करने लगे। धीरे-धीरे चतुर्दिक नाग देवता की महिमा का प्रचार हुआ। दूर-दूर के गाँवों से लोग आकर नाग देवता की पूजा करने लगे। आखिर नागदेवता के प्रति लोगों में ऐसी श्रद्धा और भक्ति पैदा हुई कि समीप के गाँव के लोगों ने नागराजा की बांबी के पास एक मन्दिर बना दिया। प्रति दिन वहाँ पर तरह-तरह के लोग आने लगे। कोई सन्तान की कामना करता, कोई अपनी बीमारी से मुक्त हो जाने की। इस प्रकार असंख्य लोग वहाँ आकर मनौतियाँ करने लगे।

नागराजा अपने उपवास के दिन बांबी पर बिता कर हर महीने कृष्ण पक्ष के प्रथमा के दिन अपने घर लौट जाते थे।

एक दिन सुमना ने उनसे निवेदन किया— "स्वामि! आप अक्सर मानव लोक में जाया करते हैं। इस का कारण मैं नहीं जानती, पर मैं ने सुना है कि वह लोक अत्यन्त खतरों से भरा हुआ है। भयंकर भी है। अगर आप किसी खतरे में फँस जायें तो मुझे इसका पता कैसे लग सकता है?"

इस पर नागराजा सुमना को एक सरोवर के पास ले गये और समझाया— "इस जल को देखो। यदि किसी कारण से मुझे कोई चोट आ जाए तो यह जल गंदला हो जाएगा। अगर कोई गरुड़ मुझको उठा ले जाए तो यह जल सूख जाएगा। ऐसा न होकर यदि कोई मांत्रिक मुझे पकड़ ले जाए तो यह जल रक्तवर्ण हो जाएगा।"

काशी नगर का एक ब्राह्मण युवक तक्षशिला में वशीकरण विद्या का अभ्यास करके उस रास्ते से अपने देश को लौट रहा था। अचानक बांबी पर लिपटे नागराजा पर उसकी दृष्टि पड़ी। उसी क्षण उस युवक ने मंत्र फूँक कर साँप को पकड़ लिया और उसको एक टोकरी में रखकर एक गाँव में ले गया और वहाँ पर नाग का खेल दिखाने लगा।

उस खेल को देख ग्रामवासी बहुत प्रसन्न हुए और ब्राह्मण युवक को धन तथा कीमती उपहार दिए। ब्राह्मण युवक अपने मन में सोचने लगा— "इस छोटे से देहात में इतनी सारी सम्पत्ति हाथ लगी तो किसी शहर में साँप का

खेल दिखाने पर न मालूम और कितना धन मिलेगा !"

इसके बाद वह नाग को लेकर काशी नगर के लिए चल पड़ा और एक महीने के बाद वहाँ पहुँचा ।

पूरे महीने तक नागराजा ने उपवास किया और ब्राह्मण युवक से प्राप्त मेंढ़कों को उसने छुआ तक नहीं ।

नागराजा ने समझ लिया कि जब तक मैं आहार लूँगा, तब तक मुझको इस टोकरी की क़ैद से मुक्ति नहीं मिलेगी ।

ब्राह्मण युवक ने काशी नगर के समीप के अनेक गाँवों में नाग का खेल दिखाया और वहाँ की जनता से अपार धन प्राप्त किया ।

नाग के मनोरंजक खेलों का समाचार शीघ्र ही काशी के राजा के कानों में भी पड़ा । उन्होंने ब्राह्मण युवक को बुलवा कर अपने महल में मनोरंजन के लिए नाग के खेलों का प्रबन्ध करवाया ।

इस बीच नागलोक में सुमना एक महीने तक अपने पति को घर न लौटते देख डर गयी और उसने सोचा कि उन पर कुछ विपत्ति आ गयी होगी । इसकी सचाई का पता लगाने के लिए वह सरोवर के पास पहुँची । सरोवर का जल रक्तवर्ण हो गया था । सुमना समझ गयी कि किसी सँपेरे ने उसके पति को पकड़ लिया है । वह अपने पति की खोज करते हुए शीघ्र ही काशी नगर पहुँची ।

सुमना जब काशी पहुँची, उस वक्त वहाँ पर साँप का खेल चल रहा था। राजा और असंख्य प्रजा वहाँ पर एकत्र होकर उस खेल को देख रहे थे। अपनी पत्नी को देखते ही नागराजा लजा गए और खेल बन्द करके झट से टोकरी के अन्दर चले गये।

सुमना मानव का रूप धर कर राजा के समीप गयी और उसने हाथ जोड़कर निवेदन किया— "महाराज, कृपया मुझे पति की भीख दीजिए।"

इतने में नागराजा टोकरी में से रेंगते हुए बाहर आये और देखते-देखते एक सुन्दर युवक का रूप धर लिया।

काशी राजा उस नागदंपति पर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उन्हें एक सप्ताह तक अपने यहाँ अतिथि के रूप में रखा। इसके बाद नागराजा के निमंत्रण पर वे भी उनके साथ सपरिवार नागलोक में गए।

नागलोक के ऐश्वर्य, सौन्दर्य एवं वैभव को देख काशीराजा के आश्चर्य की कोई सीमा न रही। साथ ही उनके मन में इस ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिए एक क्षण के लिए कामना भी जगी।

इस पर काशीराजा ने नागराजा से पूछा— "ऐसे वैभव और ऐश्वर्य से भरपूर नाग लोक को छोड़कर आप नाग के रूप में चींटियों की बांबी से लिपट कर क्यों लेटे रहते हैं? क्या मैं इस का कारण जान सकता हूँ?"

"राजन! चाहे यहाँ पर जितना भी वैभव क्यों न हो, जन्म से मुक्ति पाने की सुविधा आपके मानव जगत में ही है। मनुष्य का अंतिम लक्ष्य मुक्ति प्राप्त करने का है। इसीलिए मैं अकसर मानव लोक में आया करता हूँ। नाग लोक के ये सारे वैभव मुझे क्षणिक सुख प्रतीत होते हैं।" नागराज ने उत्तर दिया।

काशी नरेश उनसे यह उत्तर सुनकर बहुत आनन्दित हुए और अपने मनुष्य जन्म पर उन्हें गर्व भी हुआ। वे जब अपने नगर को लौट रहे थे, तब नागराजा ने उन्हें अनेक अमूल्य उपहार भेंट किए।

आहुति

राजस्थान का उदयपुर राज्य महाराणाओं के शासन काल में अत्यन्त वैभवपूर्ण रहा है। महाराणा भीम सिंह के राज्य काल में उदयपुर अत्यन्त सुंदर नगर के रूप में विकसित हुआ।

उस सुन्दर नगर में महाराणा की पुत्री कृष्ण कुमारी अनुपम रूपवती के रूप में प्रसिद्ध थी। उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर सभी उसे "राजस्थान-सुमन" कहा करते थे। उसका मधुर और कोमल स्वभाव उदयपुर की जनता के लिए अत्यन्त आनन्द की बात थी।

जयपुर के शासक जगतसिंह ने कृष्ण कुमारी के साथ विवाह करने का संकल्प किया और महाराणा के पास एक दूत के द्वारा यह संवाद भेजा। महाराणा ने जगतसिंह के दूत को यह वचन देकर भेज दिया कि शीघ्र ही उनके निर्णय की सूचना भेज दी जायेगी। महाराणा ने अपनी पुत्री के विवाह के सम्बन्ध में महारानी तथा मंत्रियों का भी परामर्श लेना चाहा।

लेकिन इसी बीच जगतसिंह तथा मारवाड़ के शासक मानसिंह में युद्ध छिड़ गया। मानसिंह ने घोषणा की कि युद्ध में जगत सिंह हार गए हैं, फिर भी जगत सिंह ने अपनी पराजय स्वीकार नहीं की। परिणाम स्वरूप ये दोनों परम शत्रु बन गए।

युद्ध समाप्त होने के बाद मानसिंह के प्रतिनिधि ने महाराणा से मिलकर निवेदन किया, "महाराणा जी, हमारे राजा मानसिंह आपकी कन्या कृष्ण कुमारी के साथ विवाह करना चाहते हैं। हम विश्वास करते हैं कि युद्ध में विजयी हुए हमारे वीर राजा के साथ आप अपनी पुत्री का विवाह करने की प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृति देंगे।"
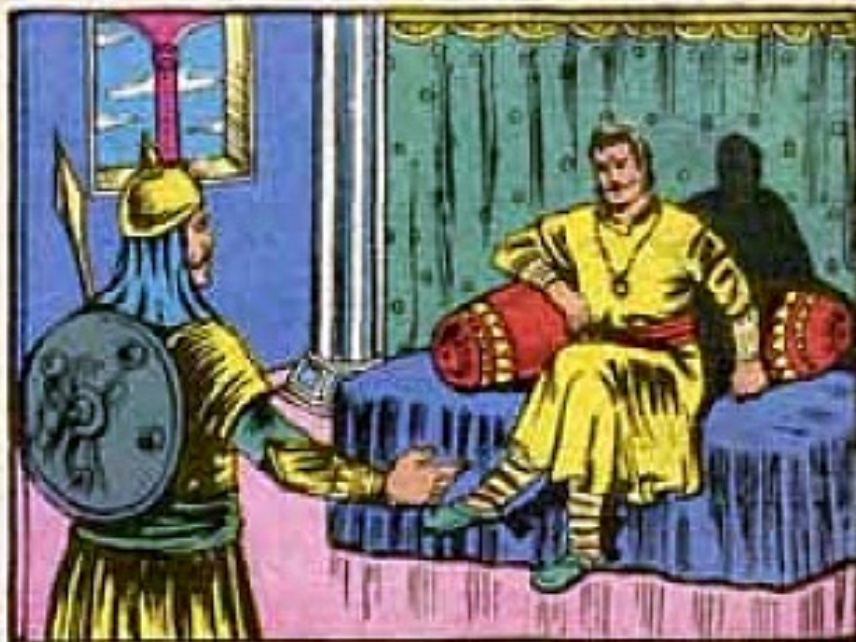
महाराणा और रानी दुविधा में पड़ गए। उन्होंने सोचा, "जगत सिंह और मानसिंह दोनों शक्तिशाली और पराक्रमी हैं। इसलिए उनमें से किसी के साथ भी युवरानी का विवाह करने से अस्वीकार करने पर उनके साथ उदयपुर के लिए युद्ध अनिवार्य होगा।" उस समय उदयपुर उनमें से किसी भी राज्य का सामना करने की स्थिति में न था।

मानसिंह के अमीर खाँ नामक एक मित्र था। वह मौका मिलते ही मानसिंह को प्रेरित करने लगा कि वे उदयपुर की युवरानी के साथ अवश्य ही विवाह करें। उसके प्रोत्साहन से मानसिंह उदयपुर के राणा पर बराबर दबाव डालने लगा।

आखिर मानसिंह की ओर से अमीर खाँ ने स्वंय महाराणा से मिलकर चेतावनी दी— "महाराणा जी, यदि आप मानसिंह के साथ अपनी पुत्री का विवाह नहीं करेंगे तो हम उदयपुर को बरबाद कर देंगे। चाहे आपको भले ही अपनी पुत्री को मार देना पड़े पर जगत सिंह के साथ उसका विवाह नहीं होना चाहिए।"

कृष्ण कुमारी अपने कारण माता-पिता पर आये हुए इस संकट को देख अत्यन्त व्यथा का अनुभव करने लगी। वह हृदय से नहीं चाहती थी कि उसकी वजह से उदयपुर नगर का सर्वनाश हो जाए। यद्यपि इसमें उसका किसी प्रकार का अपराध न था, फिर भी माता-पिता ने उसके साथ बात करना बन्द कर दिया।

इसके कुछ दिन बाद जगत सिंह और मानसिंह दोनों ने युवरानी के साथ विवाह करने के लिए उदयपुर पर आक्रमण कर दिया । नगर की स्थिति भयानक हो गयी । राजा और उनके परिवार की समझ में कुछ न आया कि इस हालत में क्या किया जाए ।

एक दिन रात को जब युवरानी अपने कमरे में लेटी हुई थी, वह धुंधली रोशनी में एक व्यक्ति को हाथ में तलवार लिए अपनी ओर बढ़ते देख चिल्ला उठी— "चाचा-जी" । दूसरे ही क्षण जवानदास नामक वह आगंतुक, जो महाराणा का रिश्तेदार था, अपनी तलवार दूर फेंक कर वहाँ से भाग गया ।

युवरानी ने अनुभव किया कि उसकी अब मृत्यु ही नगर को खतरे से बचा सकती है । शायद इसीलिए उसकी हत्या करने केलिए बड़े लोगों ने जवानदास को नियुक्त किया है । उसी क्षण उसने अपनी सखियों को जहर लाने का आदेश दिया । विषादपूर्ण मुस्कराहट के साथ विषपान करके युवरानी ने अपने परिवार और नगर की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी ।

जल्दी काम शैतान का

बसरा नगर में अब्दुल रजाक नामक एक सौदागर रहता था। वह नाव से दूर के द्वीपों में सौदा बेचा करता था। उसके दो जुड़वें बच्चे थे।

एक दिन वह अपने व्यापार के काम से एक नाव से बाहर निकला और बहुत दिनों के बाद श्वेत द्वीप में पहुँचा। वहाँ पर उसकी वस्तुओं की बड़ी मांग थी, इस वजह से व्यापार में उसे खूब फ़ायदा हुआ। उस द्वीप के राजा ने खुद नाव के पास आकर उसकी अनेक क़ीमती चीज़ें खरीदीं !

रजाक समुद्री व्यापार के सिलसिले में इसके पूर्व अनेक द्वीपों में जा चुका था। राजा ने उसे अपने महल में दावत दी। रजाक ने राजा से अपने घूमे हुए कई द्वीपों की विशेषताओं की चर्चा की। इसलिए राजा के मन में रजाक जैसे अनुभवी व्यक्ति के द्वारा और भी नई बातें जानने की इच्छा हुई। इस कारण राजा ने अनुरोध किया कि रजाक थोड़े दिनों तक उनके दरबार में रहे।

इस तरह कुछ साल बीत गए। रजाक की पत्नी बहुत समय तक अपने पति को घर न लौटते देख चिन्ता में डूब गयी। लेकिन आखिर कोई उपाय न देख वह स्वयं अपने दोनों पुत्रों को साथ लेकर उस श्वेत द्वीप के लिए चल पड़ी।

कुछ दिन बाद ये लोग एक बंदरगाह पर पहुँचे। रजाक की पत्नी को मालूम हुआ कि उस बंदरगाह में रात को श्वेत द्वीप से एक नौका आने वाली है। उसने अपने दोनों पुत्रों को नौका में रहने वाले लोगों से रजाक के बारे में पता लगाने भेजा।

दोनों जुडवें भाई बन्दरगाह पहुँच कर नौका के अन्दर चले गए। वह नौका किसी और की नहीं बल्कि उनके पिता की ही थी। वह राजा से विदा लेकर बसरा को वापस लौट रहा था

(अरब्य रजनी की कहानी)

जुड़वें भाई जब नौका के अन्दर पहुँचे तब रजाक अपने धन की थैली न पाकर खलासियों से पूछ-ताछ कर रहा था। उस थैली को रजाक की नाव के एक खलासी ने ही चुराया था, किन्तु उसने नौका में आये हुए जुड़वें भाइयों की ओर इशारा करके रजाक को बताया कि उन को चोरी करते हुए मैं ने देख लिया है। इस पर रजाक गुस्से में आ गया और उनकी ओर ध्यान से देखे बिना उन दोनों को समुद्र में फेंकने के लिए खलासियों को आदेश दे दिया। खलासियों ने उसी वक्त उन जुड़वें भाइयों को समुद्र में फेंक दिया।

रजाक की पत्नी अपने पुत्रों को न लौटते देख सारी रात चिन्ता में डूबी रही और सवेरा होते ही नौका के पास पहुँची। रजाक उसको देखकर बहुत आनन्दित हुआ। पर जब उसने अपने जुड़वें पुत्रों का समाचार सुना तब वह दुःख और पछतावे में सिर धुनने लगा। वह समझ गया कि पिछली रात उसने जिन दो युवकों को समुद्र में फिंकवाया था, वे दोनों उसी के पुत्र थे।

उस दम्पति के मन में अब भी यह आशा थी कि उनके बच्चे किसी न किसी तरह कहीं किनारे लग गये होंगे। वे कई दिनों तक समुद्री किनारों की खोज करवा कर और आखिर में अपने पुत्रों का पता न पाकर निराश हो लौट आए।

कुछ दिन बीत गए। रजाक और उसकी पत्नी ने किसी बच्चे को दत्त पुत्र बनाने का निश्चय किया। एक दिन रजाक गुलामों के हाट से एक युवक को खरीद कर अपने घर ले आया। उसको देखते ही रजाक की पत्नी विस्मय में आ गई और उस को अपना ही पुत्र अनायास मिल गया था। इस खुशी में वह उसका आलिंगन करती हुई बोली, "उफ! क्या अभी तक आप इसको पहचान नहीं पाये? यह और कोई नहीं, हमारा छोटा पुत्र शेराज है।"

रजाक की प्रसन्नता का कोई पारावार न था। उसने अपने छोटे पुत्र से गले लगाया, बड़ी देर तक प्यार किया तब उसने अपने बड़े पुत्र का समाचार पूछा। पर उसको अपने बड़े भाई का समाचार बिल्कुल मालूम न था। समुद्र में

गिरकर जब वह छटपटा रहा था तब उसे एक डोंगी वाले ने देखा और उसको बचाकर गुलामों के एक सौदागार के हाथ बेच डाला था। यह सारा वृत्तांत शेराज ने अपने पिता को आदि से अंत तक सुनाया। शेराज की दुख भरी कहानी सुन कर रजाक की आँखों में आँसू आ गए।

इसके छः महीने बाद पिता-पुत्र कुछ चीज़ों को नौका पर लादकर एक नये द्वीप में पहुँचे। छोटा पुत्र उस द्वीप के राजा के लिए कुछ क़ीमती चीजों को लेकर उन्हें भेंट देने के लिए राज महल में पहुँचा।

राजा उपहार की उन वस्तुओं को देख बहुत प्रसन्न हुए और शेराज को कुछ समय तक अपने अतिथि के रूप में रहने का अनुरोध किया। इस प्रकार उन दोनों के बीच गाढ़ी मैत्री हो गयी। पर यह मैत्री राज परिवार के कुछ लोगों के क्रोध का कारण भी बनी। वे शेराज को हानि पहुँचाने की योजनाएँ बनाने लगे।

एक दिन शाम को राजा अचानक बीमार पड़ गए। शेराज ने उस द्वीप में पहुँचने के बाद कुछ दिनों में यह भेद जान लिया था कि राज्य के कुछ अधिकारी राजा से असंतुष्ट हैं और उनसे द्वेष करते हैं। ऐसी हालत में अस्वस्थ और असहाय स्थिति में रहने वाले राजा का जीवन खतरे से खाली न था।

शेराज यों विचार करके उस दिन रात को राजा के शयन कक्ष के सामने तलवार लेकर रात भर पहरा देता रहा। सवेरा होने के बाद

राजा थोड़े स्वस्थ हुए।

पिछली रात को कुछ अधिकारियों ने शेराज को राजा के शयन कक्ष के सामने देखा था। उन लोगों ने राजा से शिकायत की, "महाराज, हमने रात को देखा कि सौदागर का पुत्र नंगी तलवार लिए रात को आपके शयन कक्ष की ओर जा रहा था। हमें देखकर वह डर कर चुप रह गया, वरना वह जरूर आपकी हत्या कर बैठता। आप तुरन्त उस दुष्ट को फाँसी के तख्ते पर चढ़ा दीजिए। वरना कभी न कभी वह आप की जान के लिए खतरा पैदा कर सकता है। कई दिनों से हमारे मन में यह शक था, लेकिन कल रात को हमने खुद अपनी आँखों से इस की करतूत देख ली। राज्य के लोभ में पड़कर न

मालूम कोई भी आदमी कब क्या कर बैठता है। आपने इस युवक पर विश्वास किया, पर यह आप के साथ विश्वासघात करने के लिए तैयार हो गया। ऐसे लोगों को क्षमा नहीं करनी चाहिए। क्यों कि ये लोग अपनी आदत से मजबूर होते हैं। फिर जैसी आप की इच्छा!"

राजा ने थोड़ी देर तक सोचकर कहा — "मैं जानता हूँ कि जल्दबाजी कई दुष्परिणामों का कारण बन जाती है। पहले इसको क़ैद में डाल दो, फिर निर्णय करेंगे कि हमें क्या करना है।"

यह समाचार मिलते ही सौदागर रजाक, राजा के पास पहुँचा और विनती की — "प्रभु! आप जाँच कीजिए कि मेरा पुत्र अपराधी है या नहीं। जल्दबाजी में आकर कोई काम नहीं करना चाहिए। इससे कभी-कभी हानि होती है। एक जल्दबाजी की वजह से मैं ज़िन्दगी भर दुःख भोग रहा हूँ।"

ये बातें सुनकर राजा ने आश्चर्य से पूछा — "तुम्हारी जल्दबाजी कैसी थी?"

"मैंने अपने दो पुत्रों को समुद्र में फेंकवा दिया है। क्या आप इस बात पर विश्वास कर सकते हैं?" यों जवाब देकर रजाक ने सारा वृत्तांत सुनाया।

राजा खुशी से चिल्ला कर बोले — "बाबू जी! इसका मतलब है कि मैंने इस समय जिसको क़ैद में डलवा दिया है, वह मेरा छोटा भाई है।" यों कहकर उसने उछल कर रजाक को छाती से लगा लिया।

अपने बड़े पुत्र को भी ज़िन्दा देखकर रजाक खुशी से फूला न समाया। इसके बाद राजा ने उसी वक्त अपने छोटे भाई को क़ैद से बुलवा लिया।

बात यह हुई थी — समुद्र में गिरने के बाद बड़ा भाई एक लकड़ की मदद से अपने प्राण बचाकर इस द्वीप में पहुँचा। इस द्वीप के राजा के कोई सन्तान न थी। वे वृद्ध हो गये थे। उन्होंने बड़े को अपना दत्त पुत्र बनाकर अपनी मृत्यु के समय उसको राज्य का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

इसके बाद रजाक अपनी पत्नी और पुत्रों के साथ सुखपूर्वक दिन बिताने लगा।

अनुभव

गुरु प्रसाद रहता तो था एक गाँव में किन्तु समीप के शहर में जाकर सेठ रामलाल की दूकान पर मुंशी का काम किया करता था। उस का मासिक वेतन दो सौ रुपये था। बचपन में ही उसके माँ-बाप गुजर गए। इसलिए उस की चाची मीनाक्षी ने उसे पाल-पोस कर बड़ा किया। उसकी एक बेटी थी। जब वह विवाह योग्य हो गई, तब उसका विवाह करके मीनाक्षी ने उस को ससुराल भेज दिया और गुरु प्रसाद के घर में ही रहने लगी।

गुरु प्रसाद वैसे देखने में कोई सुंदर नहीं था और उस पर उसका वेतन भी बहुत कम था। फिर भी एक अत्यंत रूपवती कन्या लावण्या के साथ उस का विवाह हो गया। इस का खास कारण था कि लावण्या के माँ-बाप बहुत ही गरीब थे।

शादी के पहले लावण्या ऐसे सपने देखा करती थी कि उसके रूप सौंदर्य पर मुग्ध होकर किसी जमीन्दार का पुत्र उसके साथ शादी कर लेगा। इसलिए गुरु प्रसाद के साथ शादी करना उसे कतई पंसद न था। इस कारण वह देवी-देवताओं से मनौतियाँ किया करती कि गुरु प्रसाद के साथ उसकी शादी किसी तरह टल जाए।

लेकिन इसके विपरीत मीनाक्षी ने लावण्या के माता-पिता से बताया, "दहेज और उपहार हम लेना नहीं चाहते। इस शुभ समय में हम ऐसी बातों को बिल्कुल भूल जाएँ।"

यह उत्तर सुन कर लावण्या उदास हो गई, लेकिन उसके माँ-बाप फूले न समाए। इस प्रकार लावण्या की शादी उसकी इच्छा के विपरीत गुरु प्रसाद से हो गई। यही कारण था कि वह ससुराल आने के बाद मीनाक्षी के प्रति आदर पूर्वक व्यवहार न करके शत्रु जैसा व्यवहार करने लगी।

ससुराल आए एक महीना भी पूरा न हुआ

रीता भार्गव

करते हो ? अकाल के इन दिनों मे खाना खिलाना भी मुश्किल है। हम कितने लोगों का भार उठा सकते हैं ? साफ़ क्यों नहीं कह देते-चाची जी, हमारी कमाई हम्हीं लोगों के लिए काफी नहीं है। आखिर हम कितने दिन आप को खिला सकते हैं ?"

मीनाक्षी बगल के कमरे में सो रही थी। उसी वक्त वह पानी पीने के लिए जाग उठी। उसने गुरु प्रसाद तथा लावण्या की बातचीत सुन ली। सवेरा होते ही वह गुरु प्रसाद से कुछ बताए बिना अपनी बेटी के घर जाने के लिए तैयारी करने लगी। गुरु प्रसाद के मन को धक्का लगा। मगर वह अपनी पत्नी के मुँह-फट जवाब से डर कर चुप रह गया।

किराए की गाड़ी में अपनी चाची को उसकी बेटी के घर उतार कर शहर पहुँचने में उसे बड़ी देर हो गई। इसलिए उसे देर तक दुकान में रहना पड़ा।

शहर से गाँव तक एक साधारण सड़क के अतिरिक्त नजदीक का एक और रास्ता भी था। जल्दी घर पहुँचने के विचार से वह निर्जन जंगल के रास्ते से अपने गाँव की ओर चल पड़ा। गुरु प्रसाद के जंगल तक आते-आते अंधेरा हो गया। मगर वह पूर्णिमा का दिन था इसलिए चारों तरफ़ सफ़ेद चाँदनी फैली हुई थी।

वह जब एक पेड़ के नीचे पहुँचा तब पेड़ के पत्तों से झर-झर की आवाज़ आई। दूसरे ही

था कि लावण्या गुरु प्रसाद से बोली— "आज के दिनों में निजी सास की भी देख भाल करने वाली कोई बहू नहीं है। ऐसी हालत में छोटी सास की सेवा करने वाली कौन बहू होगी ! कह क्यों नही देते कि तुम्हारी चाची अपनी बेटी के घर चली जाए।"

पत्नी के मुहँ से ये बातें सुन कर गुरु प्रसाद बहुत दुखी हुआ और व्यथा पूर्ण स्वर में बोला— "यह तुम क्या कहती हो ? मेरी चाची इस घर में हमारे लिए बड़ा साहस बन कर रहेंगी।"

इस पर लावण्या खीझ कर बोली— "तुम्हारा वेतन हमारे पेट भरने के लिए भी काफी नहीं है। तुम तो थोड़े ही समुद्री व्यापार

क्षण पत्तों के बीच में कठोर स्वर में एक गीत सुनाई पड़ा—

कौन है । वह कौन है ।
वह सामने आ जाए ।
वह जो मांगे उसे देना है ।

गुरु प्रसाद ने चकित होकर ऊपर देखा । वह जामुन का पेड़ था । उसने कहा—

जामुन का पेड़ क्या दे सकता है ?जामुन का फल ही तो देगा ।

दूसरे ही पल में जामुन का फल उस के पैरों के पास गिर पड़ा । उस फल को उठाकर थैली में डाल कर गुरु प्रसाद आगे बढ़ा ।

थोड़ी दूर जाने पर एक और पेड़ के पत्ते झर-झर कर उठे । इसके बाद कठोर स्वर में यह गीत सुनाई दिया—

मैं क्या हूँ— तुझे क्या दूँ ?

गुरु प्रसाद ने उस पेड़ को कैथ समझकर कहा—

कैथ वृक्ष क्या दे सकता है ?
कैथ फल ही तो देगा ।

दूसरे ही क्षण उस के पैरों के आगे एक कैथ फल आ गिरा । गुरु प्रसाद ने उस फल को भी अपनी थैली में डाल लिया । थोड़ी दूर और आगे बढ़ने पर एक और पेड़ के पत्ते झर-झर करने लगे । उसके पत्तों से भी पहले से कहीं अधिक कठोर स्वर में यह गीत सुनाई दिया—

"देता हूँ, लो, ले लो ।
तू जो भी मांगेगा दे दूँगा ।

सोचे बगैर ले लो तो ।"

गुरु प्रसाद ने अपने हाथों से दोनों कान बंद किए, पेड़ की ओर सर उठा कर देखा । "यह तो आम का पेड़ है ।" उत्साह में आकर बोला—

"आम का पेड़ और क्या दे सकता
आम का फल ही तो देगा ।"

दूसरे ही क्षण उसके पैरों के सामने एक आम का फल आ गिरा । गुरु प्रसाद उस को भी थैली में डाल कर थोड़ी देर बाद घर पहुँचा ।

लावण्या थैली में उन तीनों फलों को देख आश्चर्य करने लगी । उसने अपने पति से पूछा— "यह तो इन फलों का मौसम नहीं है । तुम्हें ये फल कैसे मिले ?"

जंगल के रास्ते घर की ओर चल पड़ा। वह ज्यों ही जामुन के पेड़ तक पहुँचा, त्यों ही पानी बरसना शुरू हो गया। पत्तों की झर-झर ध्वनि के साथ कल की बातें उसे फिर से सुनाई पड़ीं।

गुरु प्रसाद ने अपनी पत्नी की बताई हुई बातें याद करके कहा— "जामुन का पेड़ अगर मुझे सुंदरता प्रदान करे तो मैं कितना प्रसन्न हो जाऊंगा।"

इतना कहते ही पेड़ पर से एक धारा के रूप में पानी उस के ऊपर गिरा। बिजली की कौंध की रोशनी में गुरु प्रसाद ने अपने शरीर की ओर देखा और उसे स्वर्णिम छाया के रंग के समान पाकर परमानंदित हो उठा।

इस के बाद गुरु प्रसाद कैथ के पेड़ के समीप पहुँचा। इसी बीच कानों के पर्दों को फाड़ने वाली ध्वनि के साथ बिजली जामुन के पेड़ पर गिर पड़ी और वह पेड़ जलकर भस्म हो गया।

कैथ के पास पहुँच कर गुरुप्रसाद ने कहा— "यह कैथ अपूर्व संपत्ति दे तो अद्भुत होगा।"

दूसरे ही क्षण उस के पैरों के सामने एक खाली थैली गिर पड़ी। गुरु प्रसाद ने उस थैली को अपने हाथ में ले लिया। इसी बीच खन्-खन् की ध्वनि के साथ उस में स्वर्ण मुद्राएं गिरने लगीं। उस समय कुछ मुद्राएं जमीन पर गिर पड़ीं। पर गुरु प्रसाद को उन्हें भी छोड़ने का मन न हुआ। उस ने उन मुद्राओं को भी उठा

गुरु प्रसाद ने सारा वृत्तांत अपनी पत्नी को सुनाया। लावण्या ने अपने पति की ओर क्रोध भरी दृष्टि दौड़ा कर पूछा— "तुमने कैसा मूर्खता पूर्ण काम किया है? क्या तुम समझते हो कि पेड़ों ने ही तुम से बातचीत की? तुम से बात करने वाले उन पेड़ों पर रहने वाले परोपकारी पिशाच अथवा वन देवता होंगे। कल भी तुम अंधेरा फैलने के बाद उसी रास्ते से घर आना! सवेरा होने पर मैं तुम्हें बताऊँगी कि उन से क्या-क्या मांगना है।"

वह रात भर नींद को तिलांजलि दे सोचती रही कि पिशाचों से क्या मांगना है। फिर सवेरा होने पर उसने अपना सुझाव पति को सुनाया।

दूसरे दिन अंधकार फैलते ही गुरु प्रसाद

कर थैली में डाल दिया। तब उस भारी थैली को लेकर वह आगे बढ़ा।

वह आम के पेड़ के पास पहुंचा ही था कि बिजली के गिरने से कैथ का पेड़ टूट कर नीचे गिर पड़ा।

"हे आम का पेड़! तुम मुझ पर भाग्य की मुहर डाल दो तो कैसा अद्भुत होगा।" गुरु प्रसाद ने कहा।

दूसरे ही पल गुरु प्रसाद को लगा कि उसके सर पर कोई चीज़ आ गिरी है। उसने सर पर टटोल कर देखा, पर उसके हाथ कुछ न लगा, गुरु प्रसाद वहाँ से चल पड़ा। इस के बाद आम का पेड़ भी बिजली के गिरने से टूट कर धराशायी हो गया।

इस के बाद गुरु प्रसाद घर की ओर चल पड़ा। तूफान और सोने की मुद्राओं के बोझ के कारण चलना दूभर हो गया। वह एक ऊंचे टीले पर चढ़ कर उतरते समय फिसल कर दल-दल में गिर गया। सोने की मुद्राओं वाली थैली दल-दल में डूब गई। उस का शरीर भी क्रमशः कंधे तक दल-दल में धंस गया। गुरु प्रसाद को लगा कि अब उसकी मौत निश्चित है। पर क़िस्मत उसके साथ थी। अचानक समीप में स्थित पेड़ की डाल टूट कर दल-दल में गिर गई। वह किसी तरह उस डाल के सहारे दल-दल से बाहर निकल गया।

गुरु प्रसाद प्रातः काल तक घर पहुँच कर बेहोश हो गिर पड़ा। उस हालत में अपने पति को देख लावण्या का दिल धड़कने लगा। उसे अपने कर्तव्य का बोध कराने के लिए कोई

अनुभवी व्यक्ति घर पर नहीं था। ऐसी हालत में लावण्या ने मीनाक्षी के पास यह समाचार भेज कर उसे बुलवाया।

दोपहर तक रोते-पीटते मीनाक्षी गुरु प्रसाद के घर पहुँची। उस की सेवा-सुश्रूषा से गुरु प्रसाद एक महीने के अन्दर पूर्ण स्वस्थ हो गया। पर जंगल में उसे जो सोना प्राप्त हुआ था और जैसे उसका शरीर सोने के समान बन गया था, वे दोनों अब गायब थे। उसके स्थान पर उस के शरीर में नये सिरे से भरे घाव के दाग मात्र बच रहे थे।

मीनाक्षी ने सारा वृत्तांत सुनकर लावण्या को समझाया— "तुमने अपने पति को पहले पिशाच से सुन्दरता मांगने की सलाह दी। पर सौंदर्य से भी स्वास्थ्य ज़्यादा महत्वपूर्ण है। इस के बिना दूसरे पिशाच से प्राप्त सोना बेकार है। कुल मिलाकर तीसरे पिशाच से मांगी गई क़िस्मत ने ही गुरु प्रसाद को दल-दल से बचाया।"

"आप तो उस वक्त सलाह देने के लिए यहाँ पर नहीं थी। इसलिए मैंने ये मूर्खतापूर्ण वस्तुएं मांगने की सलाह दे कर उन्हें कष्ट पहुँचाया है।" यों कह कर वह अपने आंचल से आंसू पोंछने लगी।

"अब भी कोई विलंब नहीं हुआ है। तुम्हारा पति मेहनत से काम करे तो अवश्य ही उन्नति कर सकता है। क़िस्मत भी उस के साथ है। तुम लोग सुखपूर्वक अपने दिन बिताओ।" यों सलाह दे कर मीनाक्षी वापसी यात्रा की तैयारी करने लगी।

लावण्या अपने आँसू पोंछती हुई मीनाक्षी के दोनों हाथ पकड़ कर बोली— "सास जी, मेरी मूर्खता को माफ़ कर दीजिए। आप कृपया कहीं मत जाइए। आपके सिवा हमारा हित चाहने वाला और कौन है। हम लोग अनुभवहीन हैं। घर में किसी अनुभवी के बिना हम लोग कैसे रह सकते हैं?"

लावण्या के भीतर यह परिवर्तन देख मीनाक्षी और गुरु प्रसाद दोनों को आश्चर्य कम और प्रसन्नता अधिक हुई।

भुलक्कड़पन की दवा

छत्रपुर के जमीन्दार की कचहरी में सिद्धनाथ नामक एक नौकर था। वह अव्वल दर्जे का भुलक्कड़ था। वह जो इस पल में सुनता उसे दूसरे पल में भूल जाता था। मालिक कोई काम उसे सौंप देता तो वह दूसरा कोई काम कर बैठता। पर वह स्वभाव से नम्र और बड़ा मेहनती था। इस कारण वह जो भी भूल करता उसे जमीन्दार क्षमा कर देता।

एक दिन रात को जमींदार के पेट में अचानक दर्द होने लगा। उसने सिद्धनाथ को बुला कर आदेश दिया कि वैद्य शेषाचार्य के घर जाकर पेट दर्द की दवा ले आये। सिद्धनाथ वैद्य शेषाचार्य के घर जाकर आध घड़ी के अन्दर दवा ले आया। लेकिन उस दवा के सेवन से जमीन्दार का पेट-दर्द जरा भी कम न हुआ। उल्टे सारी रात वह पीड़ा से परेशान था।

दूसरे दिन सवेरे शेषाचार्य जमीन्दार के घर आया और उसने उन से पूछा— "साहब, आप का सर दर्द अब कैसा है? कम हो गया है न?"

जमीन्दार गुस्से में आकर बोला— "किसने आप को बताया कि मुझे सर दर्द हो गया है। मैं ने सिद्धनाथ से कहला भेजा था कि मुझे पेट में दर्द हो रहा है। कहीं आपने सर दर्द की दवा तो नहीं दी? आप की वजह से रात भर मैं किस तरह परेशान था, जानते हैं?"

शेषाचार्य ने घबरा कर पूछा— "आप यह क्या कहते हैं, साहब! सिद्धनाथ ने मुझ से कहा था कि आप को सर दर्द हो गया है। इसलिए मैंने सर दर्द की दवा भेज दी। इस में मेरा क्या दोष है?"

जमीन्दार ने समझ लिया कि गलती तो सिद्धनाथ की ही है। उसने रात की पीड़ा की याद की तो उसके गुस्से का पारा चढ़ गया। उसी वक्त उस ने सिद्धनाथ को बुलाकर डांटा

संतोष कुमार

और कहा— "अरे दुष्ट ! मैं तुम्हारी वजह से रात भर परेशान था । कौन जाने तुम जैसे भुलक्कड़पन के कारण कभी न कभी शायद मेरी जान पर भी आफ़त आ जाए । तुम को इसी वक्त मैं नौकरी से हटाता हूँ ।" यह कह कर जमीन्दार ने उस का वेतन देकर उसे घर भेज दिया ।

लेकिन दूसरे दिन सिद्धनाथ कचहरी में फिर आ गया ।

जमीन्दार ने उसकी ओर क्रोध भरी दृष्टि दौड़ाकर पूछा— "मैंने कल ही तुम्हें बताया था कि तुम को नौकरी से हटाया है, फिर तुम काम पर क्यों आए ?"

"जी हाँ, साहब ! मैं यह बात भूल गया, आगे से काम पर नहीं आऊँगा । मुझे माफ़ कीजिए ।" यों कह कर उसने अपनी जेब से थोड़े रुपये निकाल कर कहा— "कल आपने किसी काम के वास्ते ये रुपये मेरे हाथ दिए थे । शायद आपने इन रुपयों को सुरक्षित रखने के लिए कहा होगा ।" यों कह कर उसे जमीन्दार से वेतन के जो रुपये प्राप्त हुए थे वह उसे जमीन्दार के सामने रखकर बाहर निकल आया ।

सिद्धनाथ के भुलक्कड़पन को देख कर इस बार जमीन्दार को दया आ गई ।

जमीन्दार ने उसको वापस बुलाकर समझाया, "अरे कमबख्त ! भुलक्कड़ आदमी ! ये रुपये तुम्हारे हैं । कल मैंने तुम को नौकरी से हटाते समय तुम्हारे वेतन के रुपये दिए थे । लो, ये रुपये ।"

"जी हाँ, सरकार ! दर असल यही बात मैं भूल गया था ।" यह कह कर और रुपये जेब में रख कर सिद्धनाथ वहाँ से जाने को हुआ ।

तभी जमीन्दार ने उसे रोककर कहा— "सिद्धनाथ ! सुन लो, मैं तुम को फिर से नौकरी देता हूँ । कचहरी के अन्दर चले जाओ ।" यों कहकर एक दूसरे नौकर को आदेश दिया— "अरे, तुम शेषाचार्य के घर जाकर भुलक्कड़पन के लिए कोई अच्छी सी दवा हो तो लेते आओ ।"
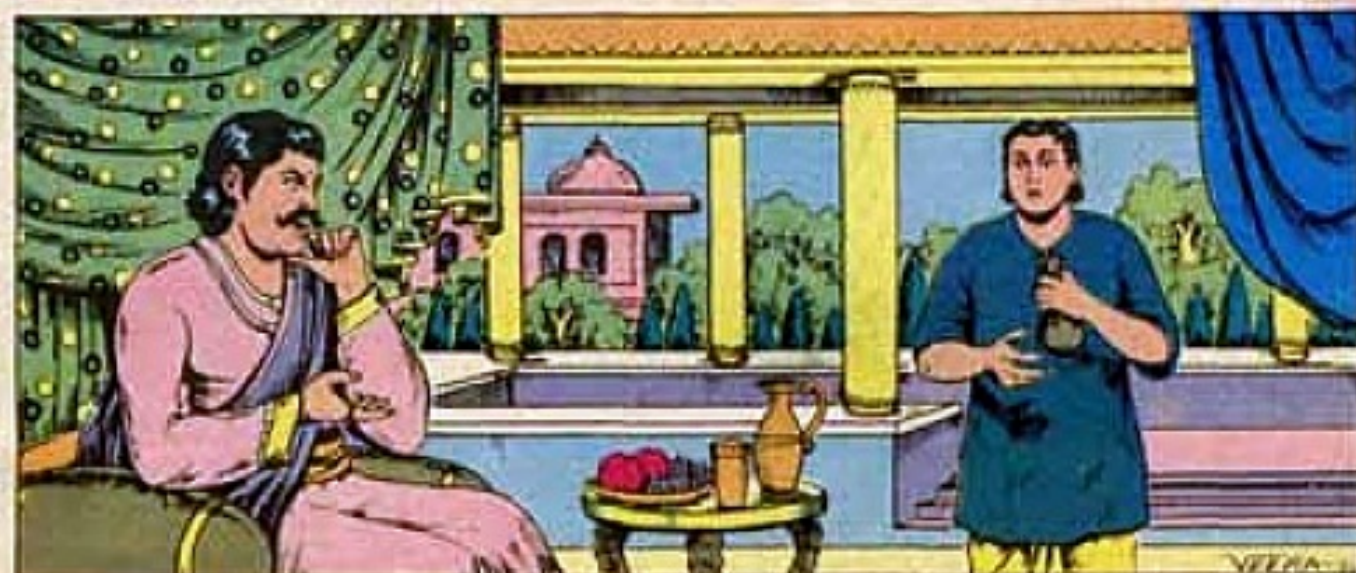
विष्णु पुराण

रामचंद्र जी का राज्याभिषेक हुआ। उन्होंने भरत और शत्रुघ्न के सहयोग से राज्य का अच्छे ढंग से संगठन किया। तब वे आदर्शपूर्वक राज्य-संचालन करने लगे। उन के राज्य में जनता हर तरह से सुखी और संपन्न थी।

एक दिन एक गाँव से एक ब्राह्मण अपने पाँच वर्ष के पुत्र के शव के साथ आया और राजमहल के द्वार पर खड़े होकर जोर-जोर से रोने लगा। अपने इकलौते पुत्र की मृत्यु पर रोते हुए ब्राह्मण बोला— "यदि राजा का सुशासन होता तो देश में इस प्रकार की अकाल मृत्यु न होती। इक्ष्वाकु राजाओं के शासन में जनता को किसी प्रकार का कष्ट न था, पर रामचंद्रजी के शासन काल में देश अनाथ होता जा रहा है।"

रामचंद्र ब्राह्मण के मुँह से यह शिकायत सुन कर अत्यंत दुखी हुए। इसके बाद उन्होंने उसी वक्त अपने मंत्री, वसिष्ठ आदि अनेक ब्राह्मणों को बुलवाकर उनको ब्राह्मण-बालक की असामयिक मृत्यु का समाचार सुनाया। इस पर नारद ने रामचंद्र जी को बताया कि शंबूक नामक एक शूद्र बड़ी भारी तपस्या कर रहा है। यह तो युग-धर्म के विरुद्ध है। इसीलिए उस बालक का असामयिक निधन हो गया है।

इस पर रामचंद्र जी ने लक्ष्मण को आदेश दिया— "लक्ष्मण, तुम जाकर उस ब्राह्मण को सांत्वना देकर उस बालक के कलेवर को तैल-भाण्ड में सुरक्षित रखो।" इसके बाद रामचंद्र जी अपने हाथ में अस्त्र लेकर पुष्पक विमान पर सवार हुए। वे पूर्व, पश्चिम और उत्तर

की दिशाओं में अनुवेषण कर अंत में दक्षिण की ओर चल पड़े। वहाँ पर एक सरोवर में औंधे सर एक आदमी भयंकर तपस्या कर रहा था।

वे तुरंत पुष्पक विमान से उतर पड़े और म्यान से तलवार खींचकर उस व्यक्ति को मार डाला। शंबूक के सर ने प्रसन्नता पूर्वक आँखें खोलीं और रामचंद्रजी को देखकर कहा— "हे रघुराम ! मृत्यु किसी भी दृष्टि से देखा जाए, अनिवार्य है। आप केवल निमित्त मात्र हैं। आप वर्णाश्रम धर्मों को मानने वाली जनता के शासक हैं। राजा तो जनता के सेवक हैं। आपने अपने धर्म का पालन किया, इसलिए आपको दुखी होने की कोई आवश्यकता नहीं है। आपको किसी प्रकार का पाप न लगेगा। मैं कुल और पेशे से परे एक योगी हूँ। मैं विष्णु के सान्निध्य को प्राप्त करने जा रहा हूँ।" यों कहकर सर ने आँखें मूंद लीं।

शंबूक की पत्नी कपिला ने रामचंद्र जी के समीप पहुँच कर उन से कहा— "हे सीतापति ! राजधर्म के पालन में भविष्य में आपको जिन कठोर परीक्षाओं का सामना करना है यह उन परीक्षाओं का आरम्भ मात्र है। मैं अपने पति के साथ खुशी से चली जा रही हूँ। आप दृढ़ होकर अपने कर्तव्य का पालन किजिए।" इस प्रकार समझाकर कपिला ने भी अपने पति के साथ प्राण त्याग दिये।

रामचंद्र जी जब अयोध्या के लिए रवाना हुए, तो रास्ते में उन्होंने उल्लू के निवास के पेड़ के घोंसले पर आक्रमण करने वाले एक चील के सिर पर इस प्रकार थपकी दी, मानों उसे दण्ड दे रहे हों ?

दूसरे ही क्षण चील के रूप में स्थित ब्रह्मदत्त शाप से मुक्त हो गये।

एक दिन विश्वामित्र रामचंद्र जी के सभा भवन में आये और अपने अपमान करने वाले शकुंत नामक राजा का वध करने का आदेश दिया। तत्काल रामचंद्रजी अपने गुरु के आदेश का पालन करने के लिए शकुन्त का वध करने चल पड़े।

हनुमान की माता अंजना देवी ने शकुन्त को

शरण दी। हनुमान ने अपनी माता के वचन की रक्षा करने के लिए रामबाण का सामना करना चाहा और नयन मूंद कर राम नाम का जाप करते हुए खड़े हो गये।

रामचंद्र जी का बाण हनुमान के हृदय में लीन हो गया। यह सब देखकर विश्वामित्र ने अपना हठ त्याग दिया तथा शकुन्त को क्षमा कर उसे आशीर्वाद दिया।

एक दिन आधी रात के समय रामचंद्रजी के शयन कक्ष के सामने एक कुत्ते ने न्याय के लिए आर्तनाद किया। इस पर रामचंद्र जी चौंक कर जाग उठे और नीचे उतर कर कुत्ते के घाव पर अपने हाथ को दबाकर रखा, जिससे खून बहना बन्द हो गया।

कुत्ते ने बताया कि वह अपने पिछले जन्म में एक पुजारी था।

पर एक दिन उसी राज्य के एक नीच व्यक्ति के मुँह से ये शब्द निकले— "पराये घर में रहने वाली पत्नी को रखकर अपनी निर्लज्जता का परिचय देने वाला मैं रामचंद्र नहीं हूं।"

इस पर रामचंद्र जी ने लक्ष्मण को आदेश दिया कि वह सीता जी को वन में छोड़ आये। यह सुनकर लक्ष्मण आवेश में आ गए। इस पर रामचंद्र जी उसको समझाते हुए बोले— "हे लक्ष्मण! एक छोटे व्यक्ति के मुँह से दंभ के रूप में जो शब्द निकले हैं ऐसा ही भाव अनेक लोगों के मन में गुप्त रूप से रह सकता है। राज्य के माने मिट्टी नहीं, मानव हैं। विविध वर्णों और वर्गों में बंटे हुए लोगों पर शासन करना तलवार की धार पर चलने के बराबर होता है। इसमें स्वार्थ के लिए थोड़ा सा भी स्थान नहीं होता। प्रजा के मनोभावों को अपना कर्तव्य मान कर राजा को अपने हृदय को पत्थर बनाना होता है। मैं इस वक्त ऐसे ही पद पर हूं।"

सीता जी के मन में अनेक दिनों से यह इच्छा थी कि वन में मुनियों के साथ आनन्द पूर्वक विहार करें। इस समय वह गर्भवती थीं। इसलिए उनकी इच्छा की पूर्ति के बहाने लक्ष्मण ने रामचंद्रजी के आदेश पर उन्हें एक घने जंगल में छोड़ दिया। फिर दुखी होकर विलाप करने

लगे— "ओह, राम-रावण युद्ध में जब मैं बेहोश हो गया था, उस वक्त हनुमान ने संजीवनी औषध लाकर मुझे यही दिन देखने को जिलाया था ।"

इस के बाद महर्षि वाल्मीकि सीता जी को अपने आश्रम में ले गए। आश्रम में ही सीता जी ने कुश-लव नामक दो सुन्दर पुत्रों को जन्म दिया ।

एक बार अयोध्या राज्य में बहुत दिनों तक वर्षा न होने की वजह से अकाल पड़ गया। सूखी धरती में दरारें पड़ गई। इसलिए गुरुजनों ने उन्हें अश्वमेधयज्ञ करने की सलाह दी। यज्ञ के लिए सीता जी का होना आवश्यक था। इसलिए रामचंद्र जी ने सीता जी की सोने की मूर्ति बनवाकर अपने पार्श्व में रखवा कर यज्ञ प्रारम्भ किया ।

अश्वमेधयज्ञ के घोड़े को केवल रघुवंशी ही नियंत्रण में रख सकते थे। उस अश्व को महर्षि वाल्मीकि के आश्रम के पास लव और कुश ने पकड़ कर पेड़ से बाँध दिया ।

यज्ञ के अश्व को छुड़ाने के लिए सेना को लेकर भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण आये। पर उन सबको लव-कुश ने बेहोश कर दिया। तब उनका सामना करने के लिए स्वयं रामचंद्र जी को आना पड़ा ।

लव-कुश अपनी माता का स्मरण कर रामचंद्र जी पर बाण छोड़ने लगे। उन बाणों के आघात से रामचंद्र जी बेहोश हो गए। इस पर सीता जी वहाँ आ पहुँचीं और श्रीराम के चरणों का स्पर्श करके उनको जगाया। तब रामचंद्र जी के साथ अन्य सभी लोग भी होश में आ गये।

इसके बाद महर्षि वाल्मीकि ने रामचंद्र जी के हाथों में उनकी पत्नी और पुत्रों को सौंप दिया।

रामचंद्र जी सीता जी के साथ सिंहासन पर बैठे। लव और कुश को अपनी जांघों पर बिठा कर उन्हें युवराजा घोषित किया ।

तदनंतर रामचंद्र जी ने सीता जी को सुझाया कि वह अपनी पवित्रता को साबित करने के लिए उचित प्रकार से शपथ लें ।

सीता जी अयोध्या नगर के मध्य खड़ी हो गईं और आकाश की ओर दृष्टिपात करके ईश्वर

से अयोध्या राज्य पर वर्षा करने की प्रार्थना की। उसी समय सारा आकाश घने बादलों से छा गया और अमृत जैसी जल धाराओं की वर्षा होने लगी।

इस प्रकार उचित प्रमाण देकर सीता जी पृथ्वी की ओर दृष्टि केंद्रित करके बोलीं— "माँ, रघुवंश के दीपक मेरे पुत्र अपने पिता के आश्रय में चले गए। अब मैं कुछ और नहीं चाहती। इसलिए तुम मुझको स्वीकार करो।"
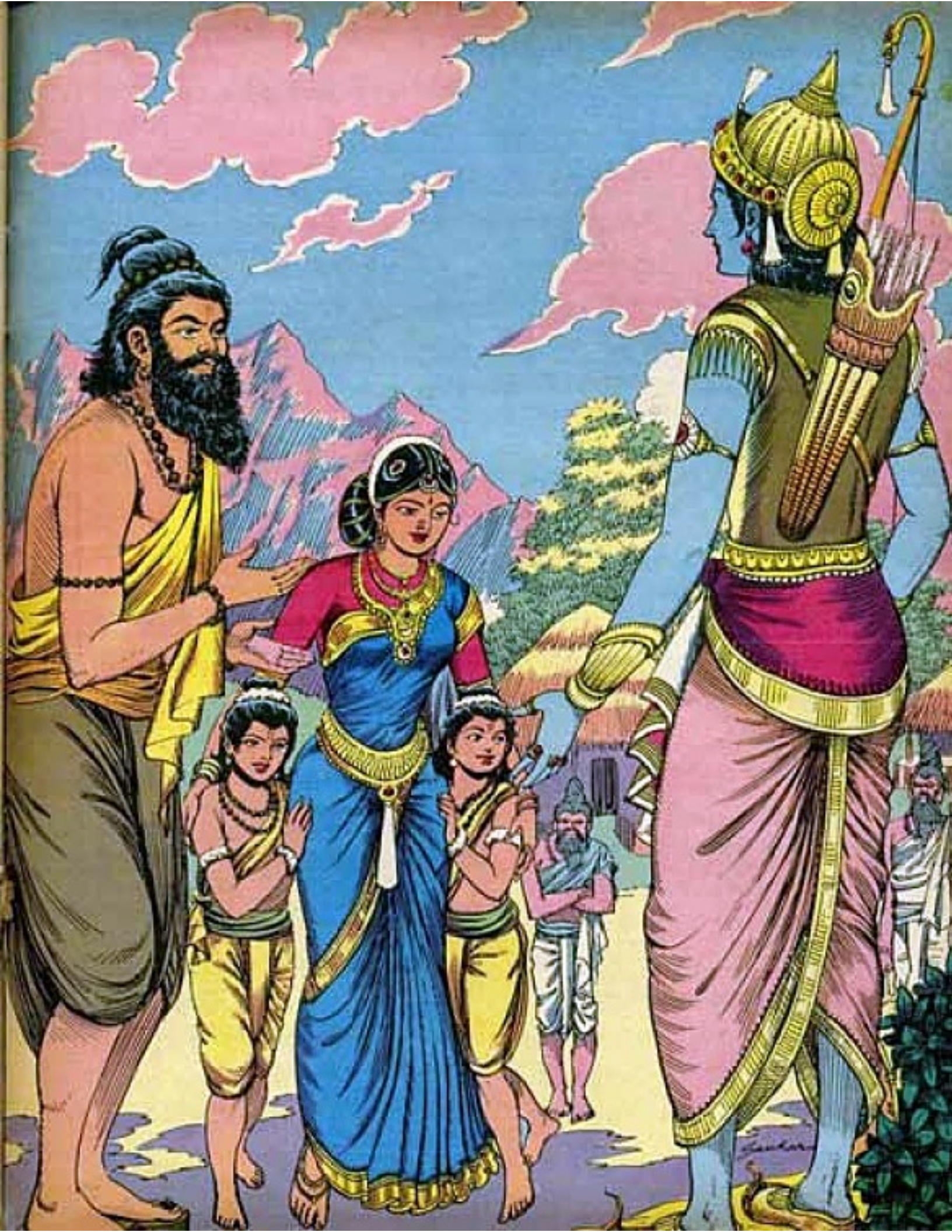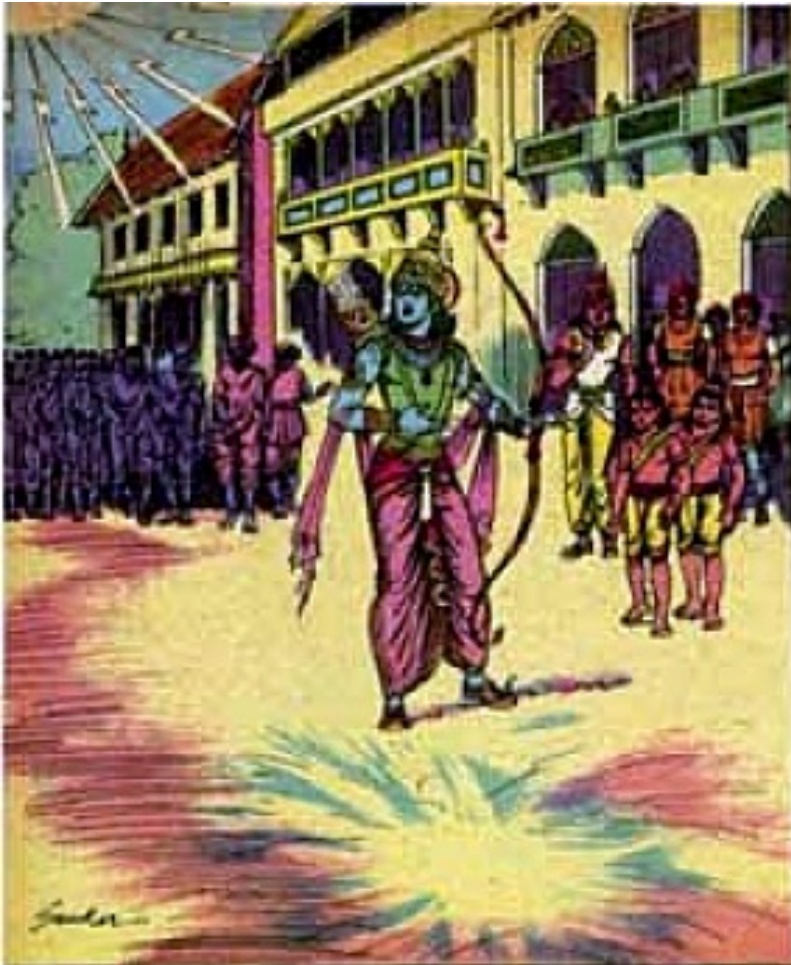
दूसरे ही क्षण पृथ्वी काँप उठी और दो भागों में फट गई। चारों तरफ़ दिव्य प्रकाश फैल गया। रत्नजड़ित सिंहासन पर भू देवी पृथ्वी पर प्रकट हुईं और सीताजी को अपनी गोद में लेकर फिर से पृथ्वी में समा गईं। उस समय स्वर्ग से फूलों की वर्षा हुई और देखते-देखते पृथ्वी की दरार भर गई।

रामचंद्र जी ने पृथ्वी को फिर से चीरने के लिए धनुष पर बाण चढ़ाया। उसी समय यह आकाशवाणी सुनाई पड़ी— "हे रामचंद्र जी! आप भू देवी पर क्रोध न कीजिए। सीता जी पृथ्वी की पुत्री हैं और वह अपने लोक में वापस चली गई हैं।"

रामचंद्र जी अपने पुत्रों के साथ सुखमय जीवन बिताते हुए अनेकानेक युगों तक राज्य करते रहे। एक दिन काल ब्राह्मण के वेश में आकर रामचंद्र से बोले— "महानुभाव, आपको एक देव-रहस्य बताने आया हूँ। राजमहल के द्वार पर आप लक्ष्मण को पहरा देने के लिए कहिए। यदि लक्ष्मण किसी को महल के अन्दर भेज दें तो उन्हें मृत्यु का दण्ड भोगना पड़ेगा।" इसके बाद लक्ष्मण द्वार पर पहरा देने लगे। यमराज ने अपना असली रूप धारण कर रामचंद्र जी को स्मरण दिलाया, "भगवन! आपके इस अवतार का उद्देश्य पूर्ण रूप से संपन्न हो गया है। इसलिए पुनः आप विष्णु के रूप में वैकुण्ठ में पधारने की कृपा करें।"

उसी वक्त दुर्वासा मुनि आ पहुँचे। उन्होंने लक्ष्मण को बताया कि उनको तत्काल रामचंद्र जी से मिलना है। अगर ऐसा नहीं किया गया तो पूरे रघुवंश को उनके शाप का शिकार होना पड़ेगा। इसलिए लक्ष्मण ने दुर्वासा मुनि को

महल के अन्दर जाने दिया और स्वयं सरयू नदी में जाकर डूब गए।

रामचंद्र जी ने लव-कुश का राज्याभिषेक करके राज्य का सारा भार उन्हें सौंप दिया।

श्रावण का महीना था। सरयू नदी उमड़ रही थी। उसके प्रवाह में गति थी। वह पूर्णिमा का दिन था और साथ ही चंद्रग्रहण का पर्व भी।

रामचंद्र जी सरयू नदी की ओर चल पड़े। उनके दोनों पार्श्वों में भरत और शत्रुघ्न चल रहे थे और मंगल तूर्यनादों से आकाश गूँज रहा था। असंख्य प्रजाजनों ने रामचंद्र जी का अनुसरण किया।

रामचंद्र जी नदी के जल में उतर गए। उनके पीछे उनके छोटे भाई उतरे। उसी समय चंद्रग्रहण समाप्त हुआ और पूर्ण चंद्रमा अपनी कांति से शोभायमान हो उठा। आसमान से देवताओं ने फूलों की वर्षा की। साम, देवगांधार, हिन्दोल रागों की मधुर ध्वनियां मानो एक साथ झंकृत हो उठीं।

चारों दिशाओं में दुधिया चाँदनी छाई हुई थी। क्षीर सागर जैसी सरयू नदी फूलों से भरी उत्ताल तरंगों के साथ तेज गति से बह रही थी।

इसके पूर्व ही लक्ष्मण शेष शैया तथा सीता लक्ष्मी के रूप में रामचंद्र जी की प्रतीक्षा कर रहे थे। भरत और शत्रुघ्न विष्णु के शंख और चक्र बन गए। तब विष्णु रामावतार को त्याग कर पुनः विष्णु रूप में प्रकट हो गये।

मानव जन्म धारण करके मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में रामचंद्र जी ने अपने पिता के आदेश का पालन करने के लिए बनवास किया, कार्य साधन के लिए एक मानव की भाँति वानरों के सहयोग से उन्होंने सेतु का निर्माण किया। तदनन्तर अपने को अजेय मानने वाले रावण का संहार करके राक्षसों के शासन का अंत किया। सीता जी को लाकर एक पत्नीव्रत का पालन करके आदर्श शासन का उदाहरण प्रस्तुत किया। इन घटनाओं से पूर्ण रामावतार विष्णु के दस अवतारों में विशेष रूप से महत्वपूर्ण और स्तुत्य माना गया। रामराज्य सदा-सदा के लिए यशस्वी हो गया। महर्षि सूत रामावतार की कथा समाप्त कर कृष्णावतार की कहानी सुनाने

लगे ।

किसी संदर्भ में शिव जी ने अपने प्रमुख भक्त दानवों का विष्णु के द्वारा संहार होते देख अपनी भृकुटियाँ चढ़ा लीं । उनकी भृकुटियों में से सहस्र कवच नामक भयंकर राक्षस उत्पन्न हुआ । उसके शरीर पर तहों के रूप में कुल एक हज़ार कवच थे । अपने कुण्डल की महिमा के कारण वह अजेय था । इसीलिए उसने एक दिन घमण्ड में आकर भीषण गर्जन करके चुनौती दी— "मैं कोई मूर्ख राक्षस मात्र नहीं हूँ । रुद्र के अंश से पैदा हुआ हूँ । अगर विष्णु में शक्ति है तो वे मेरे सामने आने का साहस करें ।"

इस चुनौती को सुनकर विष्णु ने नर और नारायण नाम के जुड़वें ऋषियों के रूप में अवतार लिया । नर-नारायण सहस्र कवच को पराजित करने के लिए तपस्या करने लगे ।

इंद्र ने उनकी तपस्या भंग करने के लिए अप्सराओं को भेजा । इस पर नारायण ने अपनी जाँघ यानी उरु में से ऊर्वशी को पैदा किया । ऊर्वशी के सामने रंभा आदि अप्सराओं के चेहरे पीले पड़ गए । इंद्र ने नर और नारायण से क्षमा माँग कर उन्हें प्रणाम किया । नारायण ने इंद्र को सुझाया कि वह ऊर्वशी को अपने साथ ले जाएं । इस पर ऊर्वशी अप्सराओं के साथ स्वर्ग लोक में चली गई ।

नारायण और नर की तपस्या निरन्तर चलती रही । उनमें से एक तप करते रहे तो दूसरे धनुष-बाण धारण कर सहस्र कवच के साथ युद्ध करते रहे । इस प्रकार हज़ारों वर्षों तक युद्ध चलता रहा । इन युद्धों में नर-नारायण ने सहस्र कवच के नौ सौ निनानवें कवचों को छेद डाला ।

इसके बाद सहस्र कवच एक कवच के साथ भाग कर सूर्य के अन्दर छिप गया ।

इस पर विष्णु ने कहा— "कायर कहीं का । डींग मार कर आखिर भाग गया और अपनी जान बचाने के लिए छिप गया । अब कृष्णावतार में तेरा अहंकार चूर-चूर कर दूँगा ।"
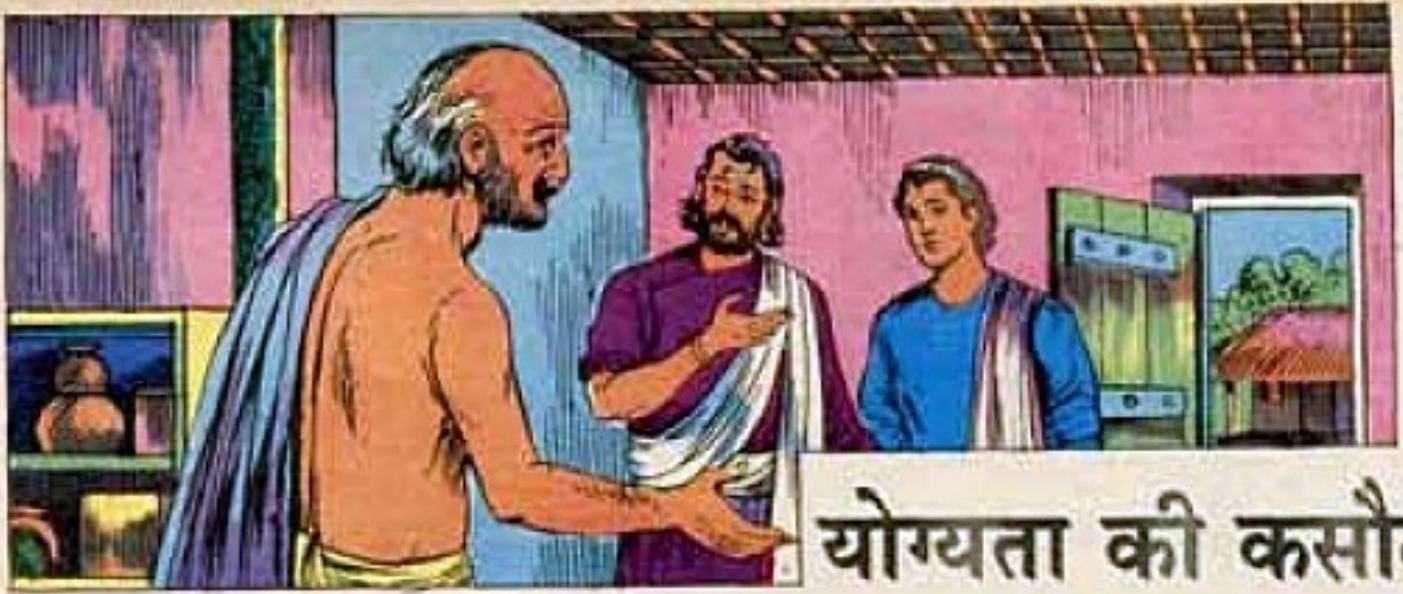
योग्यता की कसौटी

दंतपुर के राजा पद्मनन्द जनता के सुख-दुख का हाल जानने के लिए वेष बदल कर देशाटन किया करते थे। एक बार जब वे अपने राज्य का भ्रमण कर रहे थे तो अचानक एक गाँव में बीमार पड़ गये। उस गाँव के रामनाथ नामक एक किसान ने अपने घर में उन्हें आश्रय देकर उनकी देखभाल की और चिकित्सा करायी। रामनाथ की सेवा और दौड़धूप से पद्मनन्द कुछ ही दिनों में पूर्ण स्वस्थ हो गये।

स्वस्थ होने के बाद पद्मनन्द ने अपना परिचय दिये बिना किसान से विदा माँगते हुए कहा— "मैं तुम्हारे उपकार के लिए कृतज्ञ हूँ। राजधानी में मेरी अच्छी साख है। बताओ, मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ ?"

किसान ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया— "मैंने गलती से अपने दूसरे पुत्र शिवनाथ को पढ़ा-लिखा दिया। अब वह खेती-बाड़ी करने से इनकार कर रहा है। वह घमण्डी और उद्दण्ड है। उसका भविष्य क्या होगा, यही चिन्ता मुझे खाये जा रही है।"

"तब एक काम करो। शिवनाथ को मेरे साथ भेज दो। मैं उसका भविष्य अच्छा बना दूँगा। तुम्हें उसके लिए अब चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है।" पद्मनन्द ने किसान को आश्वासन देते हुए कहा।

किसान ने बड़ी खुशी के साथ अपने बेटे को उस अजनबी के साथ भेज दिया। शिवनाथ राजधानी जाते समय बहुत प्रसन्न था।

राजधानी पहुँचते-पहुँचते राजा ने अनुभव किया कि शिवनाथ सचमुच उद्दण्ड और घमण्डी है और दरबार में किसी पद के योग्य नहीं है। फिर भी, किसान को उन्होंने वचन दिया था, इसलिए निभाना जरूरी था।

राजधानी पहुँचते ही राजा पद्मनन्द ने शिवनाथ को एक सराय में ठहराने का प्रबन्ध कर दिया और रामन्तक को बुलवा भेजा।

'वसुन्धरा'

शमन्तक राज्य के आय-व्यय का प्रधान लेखापाल था। उसके अधीन दस लेखाँधिकारी थे और प्रत्येक लेखाधिकारी के नियंत्रण में बारह कर्मचारी काम करते थे।

दरबार के सभी लोगों का यह विचार था कि शमन्तक एक योग्य और समर्थ अधिकारी है तथा हर तरह के स्वभाव वाले व्यक्ति से काम लेने की क्षमता रखता है।

पद्मनन्द ने शमन्तक से कहा— "शिवनाथ को अपने विभाग में कोई काम दे दो। लेकिन वह बड़ा घमण्डी और उद्दण्ड है। उसे नौकरी से हाथ धो बैठने का भय नहीं है और न वह दण्ड से डरता है, फिर भी उससे काम लेना है और अनुशासन में रखना है। तुम एक समर्थ अधिकारी हो, इसीलिए उसे तुम्हारे ही सुपुर्द किया है। यह तुम्हारी योग्यता की कसौटी है।"

"महाराज! मैं निश्चय ही उसे अनुशासन में रख कर उससे पूरा काम लूँगा। आप कल उसे मेरे पास भिजवा दीजिए।" शमन्तक ने विनयपूर्वक कहा।

दूसरे दिन शिवनाथ शमन्तक से मिला। शमन्तक ने उससे कुछ प्रश्न पूछे। शिवनाथ ने किसी भी प्रश्न का उचित उत्तर नहीं दिया। फिर भी शमन्तक नाराज़ नहीं हुआ बल्कि कहा— "मैं तुमसे बहुत प्रभावित हूँ। तुम एक सच्चे और ईमानदार कर्मचारी बन सकते हो और तुम्हारे कारण मेरा काम काफी सरल हो सकता है। फिलहाल तुम्हें पचास रुपये का मासिक वेतन दिया जायेगा।"

शिवनाथ शमन्तक की बातों से बहुत प्रसन्न हुआ। शमन्तक ने अपने एक लेखाधिकारी को बुला कर और उसे कुछ समझाकर शिवनाथ को उसके हाथ सौंप दिया।

दो ही दिन बाद लेखाधिकारी ने शमन्तक से शिकायत की— "महानुभाव। शिवनाथ बिलकुल काम नहीं करता और न दूसरों को करने देता है। उसे अनुशासन में रखना मेरे बस का नहीं है।"

शमन्तक ने आँखें दिखाते हुए कहा— "तुम अपने अधीनस्थ कर्मचारियों से काम नहीं ले सकते-तो यह तुम्हारी कमजोरी है। या तो उससे काम लो या उसका काम तुम खुद करो।"

उस दिन से शिवनाथ का काम भी लेखाधिकारी ही करने लगा। इसलिए वह मन ही मन शिवनाथ से जलता और चिढ़ता तथा उसे हर रोज़ यह कर डराया-धमकाया करता था— "तुम्हारा यह व्यवहार यदि राजा को मालूम हो गया तो वे बहुत कठोर दण्ड देंगे। सावधान रहो ! यहाँ के विधान में तुम्हारे जैसे व्यक्ति के लिए क्षमा नहीं है।"

फिर भी शिवनाथ अपने अधिकारी की धमकियों की परवाह नहीं करता, हालांकि उसे इस बात की जानकारी हो गई थी कि राजा अपराधियों को वास्तव में बहुत भयंकर दण्ड देते हैं।

कुछ दिनों के बाद राजा पद्मनन्द ने शमन्तक को बुला कर पूछा— "शिवनाथ का काम कैसा है ? क्या वह रास्ते पर आ गया है ?"

"अब वह ठीक काम कर रहा है महाराज !" शमन्तक ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया।

इस उत्तर से राजा सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने गुप्त रूप से शिवनाथ के बारे में जानकारी मंगवाई और शमन्तक को फिर बुला कर उसे डाँटते हुए कहा— "तुम शिवनाथ के व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं ला सके। साथ ही अपने अधिकार के बल पर अपने अधीन काम करनेवाले भोले-भाले अधिकारी से, डरा-धमका कर, अधिक काम लेते हो !"

"महाराज ! वह भोला-भाला नहीं है। यदि वह शिवनाथ से काम नहीं ले सकता है तो यह उसकी असमर्थता है। इसलिए वह अपनी

असमर्थता का दण्ड भोग रहा है।" शमन्तक ने विनय पूर्वक उत्तर दिया।

राजा ने पुनः डांटते हुए कहा— "यदि वह अधिकारी शिवनाथ से काम लेने में असमर्थ है तो किसी अन्य समर्थ अधिकारी के अधीन उसे भेज देते।"

"महाराज! शिवनाथ के व्यवहार के बारे में सभी जानते हैं। इसलिए कोई भी अधिकारी उसे पास नहीं रखना चाहेगा।" शमन्तक ने विनय पूर्वक अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा।

"तब तो तुम मेरी कसौटी पर असफल रह गये!" राजा ने निराश होकर कहा।

"नहीं महाराज! आपने मुझे एक अतिरिक्त कर्मचारी दिया और तब से एक अधिक व्यक्ति का काम कार्यालय में हो रहा है।" शमन्तक ने पुनः निवेदन किया।

"ऐसी बात नहीं है। जब शिवनाथ से काम लेने में तुम सफल हो जाओगे, तभी मैं तुम्हें समर्थ अधिकारी मानूँगा।" राजा ने असन्तोष प्रकट करते हुए कहा।

शमन्तक को राजा की यह बात लग गई। उसने अनुभव किया कि राजा ठीक कह रहे हैं। वास्तव में उसने शिवनाथ के स्वभाव में परिवर्तन लाने की कोई कोशिश ही नहीं की थी। इसलिए उसने अपनी भूल स्वीकार कर ली साथ ही उसने यह निश्चय भी किया कि राजा की इस परीक्षा में वह सफल होकर रहेगा। उसने राजा से प्रार्थना करते हुए कहा— "प्रभु! मुझे थोड़ी अवधि और दी जाये। मैं अपनी योग्यता प्रमाणित कर दूँगा।" राजा ने उसकी बात मान ली।

इसके बाद शमन्तक ने शिवनाथ को बुला कर उससे बातचीत की। बातचीत से उसने यह मालूम कर लिया कि उसे गाँव में रहना पसन्द नहीं है और राजधानी में रहना उसे अच्छा लगता है। फिर उसने शिवनाथ से यह भी पता कर लिया कि वह यहाँ के वेतन, सुविधा और वातावरण से बहुत सन्तुष्ट है तथा वह उन्हें खोना नहीं चाहेगा। शमन्तक को उसकी बातचीत से यह भी पता चला कि इसमें काम करने की योग्यता है लेकिन दब कर काम करना उसे पसन्द नहीं है क्यों कि अपने को दब्बू कह लाना उसे अच्छा नहीं लगता; लेकिन चुनौती

मान कर वह काम कर सकता है।

जब शमन्तक ने उसकी मानसिक स्थिति और बनावट के बारे में जान लिया तब उसे डांटते हुए पूछा— "साफ़-साफ़ बताओ, तुम दरबार में काम करना चाहते हो या नहीं ? तुम्हारे काम और व्यवहार से कोई अधिकारी खुश नहीं है और तुम्हारी यह शिकायत राजा तक चली गई है। लेकिन अब भी मेरा विश्वास है कि तुम इतने मूर्ख और निठल्ले नहीं हो और तुममें काम करने की योग्यता है। इसलिए मैं उन शिकायतों में विश्वास नहीं करता। किन्तु मैं तुम्हारा काम खुद देखना चाहता हूँ और यह तुम्हें अन्तिम मौक़ा देता हूँ। मैं एक महीने के बाद तुम्हारे काम की परीक्षा लूँगा। यदि तुम्हारा काम सन्तोषजनक नहीं हुआ तो समझूँगा कि तुम्हारे अधिकारी ठीक ही तुम्हारी शिकायत करते हैं और तुम्हें यह समझ कर निकाल दूँगा कि तुम असभ्य, असमर्थ और निठल्ले हो। यदि तुम्हारा काम सन्तोषजनक हुआ तो यह समझूँगा कि तुम्हारी शिकायत करने वाले झूठे हैं, वे तुमसे ईर्ष्या करते हैं, इसलिए मैं उन्हें निकाल दूँगा। बस! अब न मुझे तुमसे कुछ सुनना है और न तुम्हें कुछ कहना है। अब तुम जा सकते हो !"

अब उसे इस बात का डर समा गया कि यदि वह काम नहीं करेगा तो उसे गाँव वापस जाना पड़ेगा और खेती-बाड़ी करना पड़ेगा। साथ ही उसे यह भी बहुत अपमान जनक लगा कि लोग उसे अयोग्य, मूर्ख और निठल्ला समझें। वह अपने अधिकारी से चिढ़ता था क्योंकि वह अक्सर उसे डराता-धमकाता और अपमानित करता रहता था और कभी भी प्यार से बात नहीं करता था। इसलिए वह उससे अपने अपमान का बदला भी लेना चाहता था। इन सब कारणों से उसने उस दिन से अपना रवैया ही बदल दिया और काम में मन लगाने लगा। एक महीने के बाद जब शमन्तक ने उसका काम देखा तो वह उसके परिवर्तन पर और साथ ही अपनी सफलता पर फूला न समाया।

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ जून १९८४ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी ।

S. G. Seshagiry

Mohan Kumar Sharma

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों । ★ अप्रैल १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए । ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा । ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें : **चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६**

फरवरी के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : तबले की थाप !

द्वितीय फोटो : क्या यूँ अलाप ! !

प्रेषक : आशीष कुमार शाह, द्वारा ए. एल. शाह, भारतीय स्टेट बैंक, कोरबा, जि. बिलासपुर

"क्या आप जानते हैं ?" के उत्तर

१. बाण कवि । उनके ग्रंथ हैं —हर्ष चरित और कादम्बरी । २. राबर्ट ब्राउनिंग और एलिज़बेथ बारेट ब्राउनिंग ३. चार्लट ब्रांटे तथा एमिली ब्रांटे ४. हंस क्रिस्टियन एण्डर्सन ५. विलियम शेक्सपियर.

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 188, Arcot Road, Madras-600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

Results of Chandamama Camlin Colouring Contest No.34. (Hindi)

1st Prize: Meetu Rani Chaurasia, Delhi-92. *2nd Prize:* Surendra Sing Jujharsing Saini, Jalagon. Vijay Laxmi Jain, Durg-491 001. Patel Jayendra D, Baroda-390 004. *3rd Prize:* Hemant Kumar Singh, Gandhidham (Kutch)-370 201. Jyoti Dammani, Raipur (M.P). Partha Nag, Parganas (W.B). Titus R. Gaikwad, Ulhasnagar-3. A. Gaffar Azizbhai Fazlani, Nanded. Sanjay Kunwar, Lucknow. Kira Bala, Jind-126 102. Ashwini Sharma, Nagpur, Sudha I. Vasu, Bombay-400 067. Km. Neeta Sharma, Allahabad (U.P)

LIKE TO FLY INTO THE EXCITING WORLD OF ADVENTURE AND HUMOUR?
DOLTON
SUPER COMICS
CAN TAKE YOU THERE
EVERY FORTNIGHT!
IT COSTS ONLY Rs. 2.50 A COPY.
EVIDENTLY THE MOST EASILY AVAILABLE COMICS MAGAZINE YOU'VE EVER READ.
ITS 36 FULL COLOUR PAGES TAKE YOU THROUGH MYSTERY AND EXCITEMENT TO A RENDEZVOUS WITH THE SUPER HEROES.
SUPERMAN
&
BATMAN
DOLTON COMICS
DC
DOLTON PUBLICATIONS
MADRAS 600 026

पार्ले
राम और श्याम
पंचकोण
पाठ में

POPPINS

पार्ले
POPPINS
रसीली • प्यारी • मज़ेदार